

॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १९ सू० ६२ म० १ ।

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

# अथर्ववेदभाष्यम्

## षोडशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमधीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन
श्री पण्डित क्षेमकरणदासत्रिवेदिना
निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.

*Griffith's Trans. Atharva 19: 62 : 1*

अयं ग्रन्थः पण्डित काशीनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकारयन्त्रालये मुद्रितः



प्रथमावृत्तौ १००० पुस्तकानि | संवत् १९७५ वि० सन् १९१८ ई० | मूल्यम् ॥-)

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (Allahabad) ।

॥ ओ३म् ॥

“वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥”

## आनन्दसमाचार ।

**अथर्ववेदभाष्यम्**—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गाते आये और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था, इस महात्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से बड़े परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द, उपदेश, २-सस्वर मूल मन्त्र, ३-सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६—आवश्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े काण्ड हैं, एक एक काण्ड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों के समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के पास पहुंचता है। वेदप्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण स्त्री पुरुष स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगावें और जगत्पिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, शिल्पविद्या, राजविद्यादि अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें। छपाई उत्तम और काग़ज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

**स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने वाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।**

| काण्ड | १ भूमिका सहित | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मूल्य | १।) | १।-) | १॥-) | २) | १॥।=) | ३) | २।) | २) | २।) | २॥) | २।) |

| काण्ड | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ | १९ | २० | मन्त्र सूची | - | पृष्ठ ३,६०० लगभग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मूल्य | २=) | १।≡) | १।) | १-) | ॥-) | ।≡) | | | | | | २९=) |

**काण्ड**—१८ छप रहा है। कांड १९ शीघ्र प्रकाशित होगा।

**हवनमन्त्राः**—धर्म शिक्षा का उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र, वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहित संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य ।)॥

**रुद्राध्यायः**—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४८ मूल्य ।=)

**रुद्राध्यायः**—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी, पृष्ठ १४ मूल्य )॥

**वेदविद्यायें**—वेदों में विमान, नौका अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन मूल्य -)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

२५ दिसम्बर १९१८। ५२, लूकरगंज, प्रयाग। (Allahabad)

## १—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड १६ ॥

| सूक्त | सूक्त के प्रथम पद | देवता | उपदेश | छन्द |
|---|---|---|---|---|
| १ | अतिसृष्टो अपां वृषभो | प्रजापति | दुःख से निवृत्ति | साम्नी बृहती आदि |
| २ | निर्दुरर्मण्य ऊर्जा | वाक् | इन्द्रियों की दृढ़ता | आसुर्यनुष्टुप् आदि |
| ३ | मूर्धाहं रयीणां | आत्मा | आयु की वृद्धि | आसुरी गायत्री आदि |
| ४ | नाभिरहं रयीणां | आत्मा | आयु की वृद्धि | साम्न्यनुष्टुप् आदि |
| ५ | विद्म ते स्वप्न जनित्रं | स्वप्न | आलस्यादि त्याग | भुरिगार्ची गायत्री आदि |
| ६ | अजैष्माद्या सनामाद्या | प्रजापति | रोग नाश | प्राजापत्याऽनुष्टुप् आदि |
| ७ | तेनैनं विध्याम्य | प्रजापति | शत्रु का नाश | आर्षी पङ्क्ति आदि |
| ८ | जितमस्माकमुद्भिन्न | प्रजापति | तथा | ब्राह्म्यनुष्टुप् आदि |
| ९ | जितमस्माकमुद्भिन्न | प्रजापति | सुख प्राप्ति का | साम्नी त्रिष्टुप् आदि |

## २—अथर्ववेद, काण्ड १६ के मन्त्र अन्यवेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से ॥

| मन्त्र संख्या | मन्त्र | अथर्ववेद (काण्ड १६) सूक्त, मन्त्र | ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र, | यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र, | सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि |
|---|---|---|---|---|---|
| १, २ | अजैष्माद्या सनामाद्या | ६ । १,२ | ८ । ४७ । १८ | | |

॥ ओ३म् ॥

# अथर्ववेदः ॥

## षोडशं काण्डम् ।

## प्रथमोऽनुवाकः ॥

### सूक्तम् १ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३ साम्नी बृहती ; २, १० याजुषी त्रिष्टुप् ; ४ आसुरी गायत्री ; ५, ८ साम्नी पङ्क्तिः ; ६ साम्न्यनुष्टुप् ; ७ आर्ची गायत्री ; ९ आसुरी पङ्क्तिः ; ११ साम्न्युष्णिक् ; १२, १३ निचृदार्च्यनुष्टुप् ॥

दुःखनिवृत्त्युपदेशः—दुःख से छुटने का उपदेश ॥

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥

अति-सृष्टः । अपाम् । वृषभः । अति-सृष्टाः । अग्नयः । दिव्याः ॥१॥

भाषार्थ—( अपाम् ) प्रजाओं का ( वृषभः ) बड़ा ईश्वर [ परमात्मा ] ( अतिसृष्टः ) विमुक्त [ छुटा हुआ ] है, [ जैसे ] ( दिव्याः ) व्यवहारों में वर्तमान ( अग्नयः ) अग्नियां [ सूर्य, बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि ] ( अतिसृष्टाः ) विमुक्त हैं ॥ १ ॥

---

१—( अतिसृष्टः ) स्वातन्त्र्येण विमुक्तः ( अपाम् ) आपः=आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, यजुः० ६ । २७ । प्रजानाम् ( वृषभः ) वृषु सेचने परमैश्वर्ये च—अभच्, कित् । परमेश्वरः । सर्वस्वामी ( अतिसृष्टाः ) विमुक्ताः ( अग्नयः ) सूर्यविद्युत्प्रसिद्धाग्नयः ( दिव्याः ) व्यवहारेषु भवाः ॥

भावार्थ—वह परमात्मा सब सृष्टि में ऐसा स्वतन्त्र रम रहा है, जैसे सूर्य बिजुली अग्नि वायु आदि संसार में निरन्तर सर्वोपकारी हैं, सब मनुष्य उस जगदीश्वर की उपासना करें ॥ १ ॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

रुजन् । परि-रुजन् । मृणन् । प्र-मृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥

म्रोकः । मनः-हा । खनः । निः-दाहः । आत्म-दूषिः । तनू-दूषिः ॥ ३ ॥

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा । अभि-अवनिक्षि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( रुजन् ) तोड़ता हुआ, ( परिरुजन् ) सब ओर से तोड़ता हुआ, ( मृणन् ) मारता हुआ, ( प्रमृणन् ) कुचलता हुआ ॥ २ ॥ ( म्रोकः ) सताने वाला, ( मनोहा ) मन का नाश करने वाला, ( खनः ) खोद डालने वाला, ( निर्दाहः ) जलन करने वाला, ( आत्मदूषिः ) आत्मा को दूषित करने वाला, और ( तनूदूषिः ) शरीर को दूषित करने वाला [ जो रोग है ] ॥ ३ ॥ ( इदम् ) अब ( तम् ) उस [ रोग ] को ( अति सृजामि ) मैं नाश करता हूं, ( तम् ) उस [ रोग ] को ( मा अभ्यवनिक्षि ) मैं कभी पुष्ट नहीं करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिन रोगों वा दोषों से आत्मा और शरीर में विकार होवे, उनको ज्ञानपूर्वक हटावें और कभी न बढ़ने दें ॥ २—४ ॥

---

२—( रुजन् ) विदारयन् ( परिरुजन् ) सर्वतो विदारयन् ( मृणन् ) मारयन् ( प्रमृणन् ) प्रकर्षेण नाशयन् ॥

३—( म्रोकः ) म्रुचु गतौ वेदे तु हिंसने-घञ्, कुत्वम् । हिंसकः ( मनोहा ) मनोनाशकः ( खनः ) खनु विदारणे—अच् । विदारकः । पीडकः ( निर्दाहः ) निरन्तर्दाहकः ( आत्मदूषिः ) आत्मदूषको रोगः ( तनूदूषिः ) शरीरदूषकः ॥

४—( इदम् ) इदानीम् ( तम् ) रोगम् ( अतिसृजामि ) अतिसर्जनं वधे दाने च । विनाशयामि ( तम् ) रोगम् ( मा अभ्यवनिक्षि ) णिजिर् शौच-पोषणयोः—लुङ्, अडभावः । नैव पुष्येयम् ॥

तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

तेन । तम् । अभि-अतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि ।
यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( तेन ) उसी [ पूर्वोक्त कारण ] से ( तम् ) उस [ अज्ञानी वैरी ] को ( अभ्यतिसृजामः ) हम सर्वथा नाश करते हैं, ( यः ) जो [ अज्ञानी ] ( अस्मान् ) हम से ( द्वेष्टि ) द्वेष करता है और ( यम् ) जिस से ( वयम् ) हम ( द्विष्मः ) द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अधर्मी लोग धर्मात्माओं से अपनी दुष्टता के कारण वैर करें, अथवा धर्मात्मा लोग जिन्हें उनके दुष्ट व्यवहार के कारण बुरा जानें, विद्वान् लोग उन दुराचारियों को प्रयत्न पूर्वक नाश करें ॥ ५ ॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥

अपाम् । अग्रम् । असि । समुद्रम् । वः । अभि-अवसृजामि ६

भाषार्थ—[ हे मनुष्यो ! ] वह [ परमात्मा ] ( अपाम् ) प्रजाओं का ( अग्रम् ) सहारा ( असि=अस्ति ) है-( वः ) तुमको ( समुद्रम् ) प्राणियों के यथावत् उदय करने वाले परमात्मा की ओर ( अभ्यवसृजामि ) मैं छोड़ता हूं ॥ ६ ॥

५—( तेन ) पूर्वोक्तेन कारणेन ( तम् ) अज्ञानिनं शत्रुम् ( अभ्यतिसृजामः ) म० ४ । सर्वतो विनाशयामः ( यः ) अज्ञानी ( अस्मान् ) धार्मिकान् ( द्वेष्टि ) बाधते ( यम् ) अज्ञानिनम् ( वयम् ) धार्मिकाः ( द्विष्मः ) बाधामहे ॥

६—( अपाम् ) म० १ । प्रजानाम् ( अग्रम् ) आलम्बनम् ( असि ) प्रथमपुरुषस्य मध्यमपुरुषः । अस्ति । वर्तते ( समुद्रम् ) अ० १० । ५ । २३ । सम्+उत्+द्रु गतौ—डप्रत्ययः । समुद्रः कस्मात्समुद्द्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः, सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि समुदको भवति समुनत्तीति वा—निरु० २ । १० । समुद्र आदित्यः, समुद्र आत्मा—निरु० १४ । १६ । समुद्रः समुद्द्रवन्ति भूतानि यस्मात्सः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ५ । ३३ । सर्वे देवाः सम्यगुत्कर्षेण द्रवन्ति यत्रेति समुद्रः—महीधरभाष्ये, यजु० ५ । ३३ । भूतानां समुदयकारकं परमात्मानम् ( वः ) युष्मान् ( अभ्यवसृजामि ) अभिलक्ष्य त्यजामि अनुज्ञापयामि ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उपदेश करें कि मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेकर अपने कर्तव्य में कुशल होवें ॥ ६ ॥

यो॒३॑ऽप्स्व॑१॒ग्निरति॒ तं सृ॑जामि म्रो॒कं ख॒निं त॑नू॒दूषि॑म् ॥ ७ ॥

यः । अ॒प्ऽसु । अ॒ग्निः । अति॑ । तम् । सृ॒जामि॒ । म्रो॒कम् ।

ख॒निम् । त॒नु॒ऽदूषि॑म् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—( यः ) जो [ दोष ] ( अप्सु ) प्राणियों के भीतर ( अग्निः ) अग्नि [ समान सन्तापक ] है, ( तम् ) उस ( म्रोकम् ) हिंसक, ( खनिम् ) दुःखदायक और ( तनूदूषिम् ) शरीरदूषक [ दोष ] को ( अति सृजामि ) मैं नाश करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष सन्तापकारी दोषों का विचार पूर्वक नाश करे ७

यो व॑ आपो॒ऽग्निरा॑वि॒वेश॒ स ए॒ष यद् वो॑ घो॒रं तदे॒तत् ॥ ८ ॥

यः । व॒ः । आ॒पः॒ । अ॒ग्निः । आ॒ऽवि॒वेश॑ । सः । ए॒षः । यत् ।

व॒ः । घो॒रम् । तत् । ए॒तत् ॥ ८ ॥

इन्द्र॑स्य व इन्द्रि॒येणा॒भि षि॑ञ्चेत् ॥ ९ ॥

इन्द्र॑स्य । व॒ः । इ॒न्द्रि॒येण॑ । अ॒भि । सि॒ञ्चे॒त् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—( आपः ) हे सब विद्याओं में व्यापक बुद्धिमानो ! ( यः ) जिस ( अग्निः ) व्यापक परमात्मा ने ( वः ) तुम में ( आविवेश ) प्रवेश किया है, ( सः ) वह ( एषः ) यह [ परमात्मा ] है, और ( यत् ) जो [ शत्रुओं के लिये ] ( वः ) तुम्हारा ( घोरम् ) भयानक रूप है, ( तत् ) वह ( एतत्=एतस्मात् )

७—( यः ) दोषः ( अप्सु ) म० १ । प्रजासु ( अग्निः ) अग्निवत्सन्तापकः ( अति सृजामि ) म० ४ विनाशयामि ( तम् ) दोषम् ( म्रोकम् ) म० ३ । हिंसकम् ( खनिम् ) विदारकम् । पीडकम् ( तनूदूषिम् ) शरीरदूषकम् ॥

८—( यः ) ( वः ) युष्मान् ( आपः ) हे सर्वविद्याव्यापिनो विपश्चितः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । २७ । ( अग्निः ) व्यापकः परमेश्वरः ( आ विवेश ) प्रविष्टवान् ( सः ) परमात्मा ( एषः ) अत्र व्यापकः ( यत् ) ( वः ) युष्माकम् ( घोरम् ) भयानकं रूपम् ( तत् ) रूपम् ( एतत् ) अव्ययम् । एतस्मात्परमेश्वरात्

इसी [ परमात्मा ] से है ॥ ८ ॥ वह [ परमात्मा ] ( वः ) तुम को ( इन्द्रस्य ) बड़े ऐश्वर्यवान् पुरुष के [योग्य] ( इन्द्रियेण ) बड़े ऐश्वर्य से ( अभि षिञ्चेत् ) अभिषेक युक्त [ राज्य का अधिकारी ] करे ॥ ९ ॥

**भावार्थ**—विद्वान् लोग उस जगदीश्वर को सर्वव्यापक और सर्वबल-दायक समझ कर बड़े महात्माओं के समान अधिकारी बन कर संसार में बड़े बड़े काम करें ॥ ८, ९ ॥

**अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥**

**अरिप्राः । आपः । अप । रिप्रम् । अस्मत् ॥ १० ॥**

**प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥**

**प्र । अस्मत् । एनः । वहन्तु । प्र । दुः-स्वप्न्यम् । वहन्तु ११**

**भाषार्थ**—( अरिप्राः ) निर्दोष ( आपः ) विद्वान् लोग ( रिप्रम् ) पाप को ( अस्मत् ) हम से ( अप ) दूर [ पहुंचावें ] ॥ १० ॥ ( अस्मत् ) हम से ( एनः ) पाप को ( प्र वहन्तु ) बाहिर पहुंचावें और ( दुःस्वप्न्यम् ) दुष्ट स्वप्न में उत्पन्न कुविचार को ( प्र वहन्तु ) बाहिर पहुंचावें ॥ ११ ॥

**भावार्थ**—मनुष्य विद्वानों के सत्संग और शिक्षा से जागते सोते कभी पाप कर्म का विचार न करें ॥ १०, ११ ॥

यह दोनों मन्त्र कुछ भेद से आ चुके हैं—अ० १० । ५ । २४ ॥

**शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे १२**

**शिवेन । मा । चक्षुषा । पश्यत । आपः । शिवया । तन्वा ।**

---

९—( इन्द्रस्य ) परमैश्वर्यवतः पुरुषस्य ( वः ) ( युष्मान् ) ( इन्द्रियेण ) परमैश्वर्येण ( अभि षिञ्चेत् ) अभिषेकयुक्तान् राज्याधिकारिणः कुर्यात् ॥

१०—( अरिप्राः ) निर्दोषाः ( आपः ) म० ८ । विपश्चितः ( अप ) दूरे ( रिप्रम् ) पापम् ( अस्मत् ) ॥

११—( अस्मत् ) ( एनम् ) पापम् ( प्र वहन्तु ) बहिर्गमयन्तु ( दुःस्वप्न्यम् ) दुष्टस्वप्ने भवं कुविचारम् ( प्र वहन्तु ) ॥

उप । स्पृशत । त्वचम् । मे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—( आपः ) हे विद्वानो ! ( शिवेन ) सुखप्रद ( चक्षुषा ) नेत्र से ( मा ) मुझे ( पश्यत ) तुम देखो, ( शिवया ) अपने सुखप्रद ( तन्वा ) शरीर से ( मे ) मेरे ( त्वचम् ) शरीर को ( उप स्पृशत ) तुम सुख से छूओ ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग कृपा दृष्टि से मनुष्यों को देख कर अपने समान स्वस्थ और उपकारी बनावें ॥ १२ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० १ । ३३ । ४ ॥

**शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः॥१३**

**शिवान् । अग्नीन् । अप्सु-सदः । हवामहे । मयि । क्षत्रम् । वर्चः । आ । धत्त । देवीः ॥ १३ ॥**

भाषार्थ—( अप्सुसदः ) प्रजाओं में बैठने वाले ( शिवान् ) आनन्दप्रद ( अग्नीन् ) विद्वानों को ( हवामहे ) हम बुलाते हैं, ( देवीः ) हे दिव्य गुण वाली प्रजाओ ! ( मयि ) मुझ में ( क्षत्रम् ) राज्य और ( वर्चः ) तेज ( आ ) आकर ( धत्त ) धारण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—शूर पराक्रमी मनुष्य विद्वान् प्रजागणों की सम्मति से राज्य पद ग्रहण करके प्रतापी होवे ॥ १३ ॥

## सूक्तम् २ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—६ ॥ वाग्देवता ॥ १ आसुर्यनुष्टुप् ; २, ३ आसुर्युष्णिक् ; ४ साम्नी बृहती ; ५ आर्च्यनुष्टुप् ; ६ आर्ची गायत्री ॥

इन्द्रियाणां दार्ढ्योपदेशः—इन्द्रियों की दृढ़ता का उपदेश ॥

---

१२—( शिवेन ) सुखप्रदेन ( मा ) माम् ( चक्षुषा ) नेत्रेण ( पश्यत ) अवलोकयत ( आपः ) म० ८ । हे विद्वांसः ( शिवया ) सुखप्रदेन ( तन्वा ) शरीरेण ( उप ) सुखेन ( स्पृशत ) ( त्वचम् ) शरीरम् ( मे ) मम ॥

१३—( शिवान् ) मङ्गलप्रदान् ( अग्नीन् ) अग्नयः=ज्ञानवन्तः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ५ । ३४ । ज्ञानिनः पुरुषान् ( अप्सुसदः ) म० १ । प्रजासु सदनशीलान् ( हवामहे ) आह्वयामः ( मयि ) पराक्रमिणि पुरुषे ( क्षत्रम् ) राज्यम् ( वर्चः ) तेजः ( आ ) आगत्य ( धत्त ) धारयत ( देवीः ) हे देव्यः प्रजाः ॥

निर्दुरर्म॒ण्य॑ ऊ॒र्जा मधु॑मती॒ वाक् ॥ १ ॥

निः । दुः-अ॒र्म॒ण्यः॑ । ऊ॒र्जा । मधु॑-मती । वाक् ॥ १ ॥

भाषार्थ—( ऊर्जा ) शक्ति के साथ ( मधुमती ) ज्ञानयुक्त ( वाक् ) वाणी ( दुरर्मण्यः ) दुर्गति से ( निः ) पृथक् [ होवे ] ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि वे समझ बूझ कर सदा सत्य वचन बोल कर दृढ़ प्रतिज्ञा वाले होवें, जिससे उनके जीवन में शक्ति बढ़े और कभी निन्दा न होवे ॥ १ ॥

मधु॑मती स्थ॒ मधु॑मतीं॒ वाच॑मुदेयम् ॥ २ ॥

मधु॑-मतीः । स्थ॒ । मधु॑-मतीम् । वाच॑म् । उ॒त्-दे॒य॒म् ॥ २ ॥

भाषार्थ—[ हे प्रजाओ ! ] तुम ( मधुमतीः ) ज्ञान वाली ( स्थ ) हो, ( मधुमतीम् ) ज्ञानयुक्त ( वाचम् ) वाणी ( उदेयम् ) मैं बोलूं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सुशिक्षित होकर सदा ज्ञानयुक्त बोलें ॥ २ ॥

उप॑हूतो मे गो॒पा उप॑हूतो गोपी॒थः ॥ ३ ॥

उप॑-हूतः । मे॒ । गो॒पाः । उप॑-हूतः । गो॒पी॒थः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—( गोपाः ) वाणी का रक्षक [ आचार्य ] ( मे ) मेरा ( उपहूतः ) आदर से बुलाया हुआ है और ( गोपीथः ) भूमि का रक्षक [ राजा ] ( उपहूतः ) आदर से बुलाया हुआ है ॥ ३ ॥

---

१—( निः ) बहिर्भवतु ( दुरर्मण्यः ) सर्वधातुभ्यो मनिन् । उ० ४ । १४५ । दुः + ऋ गतिप्रापणयोः—मनिन् । ऋन्नेभ्यो ङीप् । पा० ४ । १ । ५ । इति ङीप्, पञ्चमीरूपम् । दुरर्मण्याः । दुर्गतेः ( ऊर्जा ) ऊर्ज बलप्राणनयोः—क्विप् । शक्त्या ( मधुमती ) ज्ञानवती ( वाक् ) वाणी ॥

२—( मधुमतीः ) ज्ञानवत्यः प्रजाः ( स्थ ) भवथ ( मधुमतीम् ) ज्ञानवतीम् ( वाचम् ) वाणीम् ( उदेयम् ) अ० ३ । २० । १० । उद्यासम् ॥

३—( उपहूतः ) आदरेणाऽऽवाहनीकृतः ( मे ) मम ( गोपाः ) वाणीरक्षक आचार्यः ( उपहूतः ) ( गोपीथः ) निशीथगोपीथावगथाः । उ० २ । ६ । गो + पा रक्षणे-थक्, ईत्वम् । भूपालः । राजा ॥

भावार्थ—मनुष्य आचार्य की शिक्षा और राजा की व्यवस्था से सुशिक्षित होकर स्वस्थ और प्रतिष्ठित रहें ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥

सु-श्रुतौ । कर्णौ । भद्र-श्रुतौ । कर्णौ । भद्रम् । श्लोकम् । श्रूयासम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[ मेरे ] ( कर्णौ ) दोनों कान ( सुश्रुतौ ) शीघ्र सुनने वाले, ( कर्णौ ) दोनों कान ( भद्रश्रुतौ ) मङ्गल सुनने वाले [ होवें ], ( भद्रम् ) मङ्गलमय ( श्लोकम् ) यश ( श्रूयासम् ) मैं सुना करूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करके अभ्यास करें कि वे कान आदि इन्द्रियों को सचेत रख कर श्रेष्ठ कर्मों के करने में शीघ्रता करते रहें ॥ ४ ॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥

सु-श्रुतिः । च । मा । उप-श्रुतिः । च । मा । हासिष्टाम् । सौपर्णम् । चक्षुः । अजस्रम् । ज्योतिः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( सुश्रुतिः ) शीघ्र सुनना ( च च ) और ( उपश्रुतिः ) अङ्गीकार करना ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें, ( सौपर्णम् ) समस्त पूर्ति वाली ( चक्षुः ) दृष्टि और ( अजस्रम् ) अचूक ( ज्योतिः ) ज्योति [ बनी रहे ] ॥ ५ ॥

---

४—( सुश्रुतौ ) श्रु—क्विप्। शीघ्रश्रोतारौ ( कर्णौ ) श्रोत्रे ( भद्रश्रुतौ ) मङ्गलश्रोतारौ ( भद्रम् ) मङ्गलमयम् ( श्लोकम् ) यशः ( श्रूयासम् ) आकर्णयासम् ॥

५—( सुश्रुतिः ) शीघ्रश्रवणम् ( च ) ( मा ) माम् ( उपश्रुतिः ) विषयाणामङ्गीकारः ( च ) ( मा हासिष्टाम् ) ओ हाक् त्यागे—लुङ्। न त्यजताम् ( सौपर्णम् ) धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । सु + पॄ पालनपूरणयोः—न, सुपर्णम्—अण्। बहुपूर्त्तियुक्तम् ( चक्षुः ) दृष्टिः ( अजस्रम् ) निरन्तरम् ( ज्योतिः ) तेजः ॥

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से अपने श्रवण
इन्द्रियों को विकल न होने दें और ऐसा स्वस्थ रक्खें कि वे अपने विषयों
पूर्ण रीति से शीघ्र अङ्गीकार कर लें ॥ ५ ॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

ऋषीणाम् । प्र-स्तरः । असि । नमः । अस्तु । दैवा
प्र-स्तराय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[ हे परमेश्वर ! ] तू ( ऋषीणाम् ) इन्द्रियों का ( प्रस्त
फैलाने वाला ( असि ) है, ( दैवाय ) दिव्य गुण वाले ( प्रस्तराय ) फैलाने
[ तुभ ] को ( नमः ) नमस्कार [ सत्कार ] ( अस्तु ) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य उस परमात्मा को सदा धन्यवाद दें कि उसने उ
वेदादि शास्त्र सुनने, विचारने और उपकार करने के लिये अमूल्य श्रवण अ
इन्द्रियां दी हैं ॥ ६ ॥

## सूक्तम् ३ [ पर्यायसूक्तम् ॥ ]

१—६ ॥ आत्मा देवता ॥ १ आसुरी गायत्री ; २ निचृदार्च्यनुष्टुप्
आर्च्यनुष्टुप् ; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; ५ साम्न्युष्णिक् ; ६ साम्नी त्रिष्टुप् ॥
आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

मूर्धा । अहम् । रयीणाम् । मूर्धा । समानानाम् । भूयासम्

भाषार्थ—( अहम् ) मैं ( रयीणाम् ) धनों का ( मूर्धा ) सिर
( समानानाम् ) समान [ तुल्य गुणी ] पुरुषों का ( मूर्धा ) सिर ( भूयासम्

---

( ) ६—( ऋषीणाम् ) सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि वि
सप्तमी—निरु० १२ । ३७ । इन्द्रियाणाम् ( प्रस्तरः ) प्रस्तारकः । प्रसारकः पर
श्वरः ( असि ) ( नमः ) सत्कारः ( अस्तु ) ( दैवाय ) दिव्यगुणवते (प्रस्तरा
प्रसारकाय तुभ्यम् ॥

१—( मूर्धा ) शिरः । मस्तकवत्प्रधानः ( अहम् ) ( रयीणाम् ) वि
सुवर्णादिधनानाम् ( मूर्धा ) ( समानानाम् ) सम्+आङ्+णीञ् प्रापणे—

हो जाऊं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य उद्योग करें कि विद्याधन और सुवर्ण आदि धन से गुणी मनुष्यों को पाकर संसार में शरीर में मस्तक के समान मुखिया होवें ॥१॥

**रुजश्च॑ मा वे॒नश्च॒ मा हा॑सिष्टां मू॒र्धा च॑ मा विध॑र्मा च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥ २ ॥**

**रु॒जः । च॒ । मा॒ । वे॒नः । च॒ । मा । हा॒सि॒ष्टा॒म् । मू॒र्धा । च॒ । मा॒ । वि-ध॑र्मा । च॒ । मा । हा॒सि॒ष्टा॒म् ॥ २ ॥**

भाषार्थ—( रुजः ) अन्धकारनाशक गुण ( च च ) और ( वेनः ) कमनीय गुण ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें, ( मूर्धा ) मस्तक [ मस्तक बल ] ( च च ) और ( विधर्मा ) विविध प्रकार धारण करने वाला आत्मा [ आत्मबल ] ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों कभी न छोड़ें ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य अज्ञान के नाश से अपने मस्तक बल अर्थात् विचार सामर्थ्य और आत्मबल को बढ़ाते रहें ॥ २ ॥

**उ॒र्वश्च॑ मा चम॒सश्च॒ मा हा॑सिष्टां ध॒र्ता च॑ मा ध॒रुण॑श्च॒ मा हा॑सिष्टाम् ॥ ३ ॥**

**उ॒र्वः । च॒ । मा॒ । च॒म॒सः । च॒ । मा । हा॒सि॒ष्टा॒म् । ध॒र्ता । च॒ । मा॒ । ध॒रुणः॑ । च॒ । ० ॥ ३ ॥**

भाषार्थ—( उर्वः ) शत्रुनाशक गुण [ शूरपन ] ( च च ) और

तुल्यगुणवताम् ( भूयासम् ) ॥

२—( रुजः ) रुजो भङ्गे—क । अन्धकारनाशको गुणः ( च ) ( मा ) माम् ( वेनः ) धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३ । ६ । अज गतिक्षेपणयोः—न, वीभावः, अथवा वी कान्त्यादिषु—न । प्रापणीयः कमनीयो वा गुणः ( च ) ( मा हासिष्टाम् ) न त्यजताम् ( मूर्धा ) मस्तकसामर्थ्यम् ( च ) ( मा ) माम् ( विधर्मा ) विविधधारक आत्मा ( च ) ( मा हासिष्टाम् ) ॥

३—( उर्वः ) उर्वी हिंसायाम्—अच् । उर्वति शूरयति मारयति शत्रून् ।

( चमसः ) भोजनपात्र [ शरीर ] ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें, ( धर्ता ) धारण करने वाला गुण ( च-च ) और ( धरुणः ) अवस्थान [ दृढ़ रहने का गुण ] ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य सङ्ग्रामरूप संसार में शूर रहकर शरीर रक्षा करते हुये शुभगुणों को धारण करें और स्थिर रक्खें ॥ ३ ॥

**विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥**

**वि-मोकः । च । मा । आर्द्र-पविः । च । मा । हासिष्टाम् । आर्द्र-दानुः । च । मा । मातरिश्वा । च । मा । हासिष्टाम् ॥ ४**

भाषार्थ—( विमोकः ) विमुक्त करने वाला गुण ( च च ) और ( आर्द्र-पविः ) गतिशोधक गुण ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें, ( आर्द्र-दानुः ) याचकों का पालने वाला गुण ( च च ) और ( मातरिश्वा ) ऐश्वर्य में बढ़ने वाला गुण ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टाम् ) दोनों न छोड़ें ॥ ४ ॥

---

शूरत्वगुणः ( च ) ( मा ) माम् ( चमसः ) भोजनपात्रं शरीरम् ( च ) ( मा हासिष्टाम् ) न त्यजताम् ( धर्ता ) धारको गुणः ( धरुणः ) कॄवृदारिभ्य उनन् । उ० ३ । ५३ । धृङ् अवस्थाने-उनन् । अवस्थानम् । दृढस्थितिगुणः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

४—( विमोकः ) मुच्लृ मोचने—घञ् कुत्वं च । दुःखविमोचको गुणः ( च ) ( मा ) माम् ( आर्द्रपविः ) अर्देर्दीर्घश्च । उ० २ । १८ । अर्द गतौ याचने हिंसायां च—रक्+अच इः । उ० ४ । १३८ । पूञ् शोधने-इप्रत्ययः । गतिशोधको गुणः ( च ) ( मा हासिष्टाम् ) न त्यजताम् ( आर्द्रदानुः ) अर्द याचने-रक्+दाभाभ्यां नुः । उ० ३ । ३२ । देङ् पालने-नु । याचकपालको गुणः (मातरिश्वा) माता लक्ष्मीः, वैभवम् । श्वन्नुक्षन्पूषन्० । उ० १ । १५८ । मातरि+टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् डित् । मातरि वैभवे ऐश्वर्ये प्रवर्धको गुणः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

भावार्थ—मनुष्य दुःखों से छूटकर उद्योग करें और अधिकारी याचकों का पालन करके वैभव बढ़ावें ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिः । मे । आत्मा । नृ-मनाः । नाम । हृद्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( मे ) मेरा ( आत्मा ) आत्मा ( बृहस्पतिः ) बड़े गुणों का स्वामी, ( नृमणाः ) नेताओं के तुल्य मन वाला और ( हृद्यः ) हृदय का प्रियो ( नाम ) प्रसिद्ध [ हो ] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य आत्मबल बढ़ाकर उत्तम गुण प्राप्त करें और वीर के समान पराक्रम करके सब के प्रिय हों ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६

असम्-तापम् । मे । हृदयम् । उर्वी । गव्यूतिः । समुद्रः । अस्मि । वि-धर्मणा ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[ हे परमेश्वर ! ] ( मे ) मेरा (हृदयम्) हृदय (असन्तापम्) सन्ताप रहित और ( गव्यूतिः ) विद्या मिलने का मार्ग ( उर्वी ) चौड़ा [होवे ], मैं ( विधर्मणा ) विविध धारण सामर्थ्य से ( समुद्रः ) समुद्र [ समुद्र समान गहरा ] ( अस्मि ) हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य विघ्नों में हृदय को शान्त रखकर वेद मार्ग की दृढ़ता और विस्तीर्णता फैलावे, क्योंकि परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ा सामर्थ्य दिया है ॥ ६ ॥

---

५—( बृहस्पतिः ) महतां गुणानां पालकः ( मे ) मम (आत्मा) (नृमणाः) नेतृतुल्यमनस्कः ( नाम ) प्रसिद्धौ ( हृद्यः ) हृदयप्रियः ॥

६—( असन्तापम् ) सन्तापरहितम् । शान्तम् ( मे ) मम ( हृदयम् ) अन्तःकरणम् ( उर्वी ) विस्तीर्णा ( गव्यूतिः ) गो + यूतिः । विद्यामिश्रणमार्गः ( समुद्रः ) समुद्र इव गम्भीरः (अस्मि) (विधर्मणा) विविधधारणसामर्थ्येन॥

सूक्तम् ४ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—७ ॥ आत्मा देवता ॥ १, ३ साम्न्यनुष्टुप् ; २ प्राजापत्योष्णिक् ; ४ आर्ची पङ्क्तिः ; ५ आसुरी गायत्री ; ६ साम्नी त्रिष्टुप् ; ७ भुरिगार्ष्युष्णिक् ॥

आयुर्वृद्ध्यर्थमुपदेशः—आयु की वृद्धि के लिये उपदेश ॥

नाभि॑र॒हं र॑यी॒णां नाभिः॑ समा॒नानां॑ भूयासम् ॥ १ ॥

नाभिः॑ । अ॒हम् । र॒यी॒णाम् । नाभिः॑ । स॒मा॒नाना॑म् । भू॒या॒स॒म् ॥ १ ॥

भाषार्थ—( अहम् ) मैं ( रयीणाम् ) धनों की ( नाभिः ) नाभि [ मध्यस्थान ] और ( समानानाम् ) समान [ तुल्यगुणी ] पुरुषों की ( नाभिः ) नाभि ( भूयासम् ) हो जाऊं ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याधन और सुवर्ण आदि धन के साथ गुणी मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, वे संसार में प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ १ ॥

स्वा॒सद॑सि सू॒षा अ॒मृतो॒ मर्त्ये॒ष्वा ॥ २ ॥

सु॒-आ॒सत् । अ॒सि॒ । सु॒-उ॒षाः । अ॒मृतः॑ । मर्त्ये॑षु । आ ॥ २ ॥

भाषार्थ—[ हे आत्मा ! ] तू ( स्वासत् ) सुन्दर सत्ता वाला, ( सूषाः ) सुन्दर प्रभातों वाला [ प्रभात के प्रकाश के समान बढ़ने वाला ] ( आ ) और ( मर्त्येषु ) मनुष्यों के भीतर ( अमृतः ) अमर ( असि ) है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यह विचारते हैं कि यह आत्मा जो बड़े पुण्यों के कारण इस मनुष्य शरीर में वर्तमान है, वह प्रभात के प्रकाश के समान उन्नति-

---

१—( नाभिः ) मध्यस्थानम् ( अहम् ) पुरुषः ( रयीणाम् ) विद्यासुवर्णादिधनानाम् ( नाभिः ) ( समानानाम् ) सू० ३ म० १ । तुल्यगुणवताम् ( भूयासम् ) भवेयम् ॥

२—( स्वासत् ) सु + आस सत्तायाम्—शतृ । शोभनसत्तावान् ( असि ) हे आत्मन् त्वं भवसि ( सूषाः ) उषः किच्च । उ० ४ । २३४ । सु + उष दाहे—असि । शोभना उषसो यस्य सः । प्रभातवेलाप्रकाशतुल्यप्रवर्धमानः ( अमृतः ) अमरः । नित्यः पुरुषार्थी ( मर्त्येषु ) मनुष्येषु ( आ ) समुच्चये ॥

शील और भी अमर अर्थात् नित्य और पुरुषार्थी हैं, वे संसार में बढ़ती करके यश पाते हैं ॥ २ ॥

**मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥**

मा । माम् । प्राणः । हासीत् । मो इति । अपानः । अव-हाय । परा । गात् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[ हे ईश्वर ! ] ( प्राणः ) प्राण [ श्वास ] ( माम् ) मुझे ( मा हासीत् ) न छोड़े, ( मो ) और न ( अपानः ) अपान [ प्रश्वास ] ( अव-हाय ) छोड़कर ( परा गात् ) दूर जावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य शरीर की स्वस्थता के साथ आत्मबल बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥

**सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥**

सूर्यः । मा । अह्नः । पातु । अग्निः । पृथिव्याः । वायुः । अन्तरिक्षात् । यमः । मनुष्येभ्यः । सरस्वती । पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( सूर्यः ) सब का चलाने वाला परमात्मा ( मा ) मुझे ( अह्नः ) दिन [ के भय ] से ( पातु ) बचावें, ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ( पृथिव्याः ) पृथिवी [ के भय ] से, ( वायुः ) सर्वव्यापक परमेश्वर ( अन्त-रिक्षात् ) अन्तरिक्ष [ के भय ] से, ( यमः ) न्यायकारी ईश्वर ( मनुष्येभ्यः ) मनुष्यों [ के भय ] से और ( सरस्वती ) सर्वविज्ञानमय परमेश्वर ( पार्थि-वेभ्यः ) पृथिवी के प्राणी आदियों [ के भय ] से [ बचावे ] ॥ ४ ॥

---

३—( मा हासीत् ) मा त्यजेत् ( माम् ) प्राणिनम् ( प्राणः ) श्वासः ( मो ) न च ( अपानः ) प्रश्वासः ( अवहाय ) परित्यज्य ( परा गात् ) दूरे गच्छतु ॥ ३ ॥

४—( सूर्यः ) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः ( मा ) माम् ( अह्नः ) दिनभयात् ( पातु ) रक्षतु ( अग्निः ) अग गतौ–नि । ज्ञानस्वरूपो जगदीश्वरः ( वायुः ) सर्वव्यापकः परमेश्वरः ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्षभयात् ( यमः ) न्यायकारी-श्वरः ( मनुष्येभ्यः ) मनुष्याणां भयात् ( सरस्वती ) सरस्–मतुप्, ङीप् । सरांसि विज्ञानानि विद्यन्ते यस्यां सा चितिः । सर्वविज्ञानमयः परमेश्वरः ( पार्थिवेभ्यः ) पृथिवीभवानां प्राण्यादीनां भयात् ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा की उपासना करता हुआ सदा उपाय करे कि वह सब प्रकार के विघ्नों से सुरक्षित होकर शुभ कर्मों को करता रहे ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

प्राणापानौ । मा । मा । हासिष्टम् । मा । जने । प्र । मेषि ५

भाषार्थ—( प्राणापानौ ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों ( मा ) मुझे ( मा हासिष्टम् ) मत छोड़ो, ( जने ) मनुष्यों के बीच ( मा प्र मेषि ) कभी नष्ट न होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शरीर और आत्मा से सावधान रहकर निर्भयता से कर्तव्य परायण हो ॥ ५ ॥

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

स्वस्ति । अद्य । उषसः । दोषसः । च । सर्वः । आपः । सर्व-गणः । अशीय ॥ ६ ॥

भाषार्थ—( आपः ) हे आप्त विद्वानो ! ( सर्वगणः ) अपने सब गणों के सहित ( सर्वः ) सम्पूर्ण मैं ( स्वस्ति ) कल्याण से ( अद्य ) अब ( उषसः ) प्रभात वेलाओं को ( च ) और (दोषसः) रात्रियों को (अशीय) पाता रहूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य आप्त विद्वानों के सत्संग से प्रयत्न करें कि वे और उन के इष्ट मित्र प्रजागण आदि सदा राति दिन सुखी रहें ॥ ६ ॥

---

५—( प्राणापानौ ) हे श्वासप्रश्वासौ ( मा ) माम् ( मा हासिष्टम् ) नैव त्यजतम् ( जने ) मनुष्येषु ( प्र ) प्रकर्षेण ( मा मेषि ) मीङ् हिंसायाम्—लुङ् । नाशं मा प्राप्नुयाम् ॥

६—( स्वस्ति ) कल्याणेन ( अद्य ) इदानीम् ( उषसः ) प्रभातवेलाः ( दोषसः ) दुष वैकृत्ये—असुन् । रात्रीः ( च ) (सर्वः) सम्पूर्णोऽहम् ( आपः ) हे आप्ता विद्वांसः ( सर्वगणः ) सर्वेष्टमित्रप्रजादिसहितः ( अशीय ) बहुलं छन्दसि । पा० २ । ४ । ७३ । अश्नुतेः शपो लुकि लिङ्युत्तमैकवचने रूपम् । प्राप्नुयाम् ॥

शक्वरी स्थ पुशवो मोपं स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानाव॒ग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

शक्वरीः । स्थ । पुशवः । मा । उपं । स्थेषुः । मित्रावरुणौ । मे । प्राणापानौ । अग्निः । मे । दक्षम् । दुधातु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—[ हे प्रजाओ ! ] तुम ( शक्वरीः ) बलवती ( स्थ ) हो, ( पशवः ) सब प्राणी ( मा उप ) मेरे समीप ( स्थेषुः ) ठहरें, ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ( मित्रावरुणौ ) दो श्रेष्ठ मित्र ( मे ) मेरे ( प्राणापानौ ) प्राण और अपान को और ( मे ) मेरी ( दक्षम् ) चतुराई को ( दधातु ) स्थिर रक्खे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और परमात्मा की उपासना में तत्पर रहते हैं, वे अपने शरीर और आत्मा से स्वस्थ रहकर कार्यकुशल होते हैं ॥ ७ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

# अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

## सूक्तम् ५ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—१०॥ स्वप्नो देवता ॥ १ भुरिगार्ची गायत्री; २, ६ प्राजापत्या गायत्री; ३, १० साम्नी बृहती; ४—६ साम्नी पङ्क्तिः; ७ आर्च्युष्णिक्; ८ साम्नी त्रिष्टुप् ॥

आलस्यादिदोषत्यागोपदेशः—आलस्यादि दोष के त्याग के लिये उपदेश ॥

७—( शक्वरीः ) स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् । उ० ४ । ११३ । शक्नोतेर्वनिप्, ङीब्रेफौ । शक्तिमत्यः प्रजाः ( स्थ ) भवथ ( पशवः ) प्राणिनः ( मा ) माम् ( उप ) उपेत्य ( स्थेषुः ) तिष्ठन्तु ( मित्रावरुणौ ) मित्रवरौ ( मे ) मम ( प्राणापानौ ) श्वासप्रश्वासौ ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः ( मे ) ( दक्षम् ) कार्यकुशलताम् ( दधातु ) स्थापयतु ॥

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑ ग्राह्याः॑ पु॒त्रो॒ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ॥ १ ॥

वि॒द्म । ते॒ । स्व॒प्न॒ । ज॒नित्र॑म् । ग्राह्याः॑ । पु॒त्रः । अ॒सि॒ । य॒मस्य॑ । कर॑णः ॥ १ ॥

अन्त॑को॒ऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥२॥ अन्त॑कः । अ॒सि॒ । मृ॒त्युः । अ॒सि॒ ॥२

तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न॒ दु॒ष्वप्न्या॑त् पाहि ३

तम् । त्वा॒ । स्व॒प्न॒ । तथा॑ । सम् । वि॒द्म॒ । सः । नः॒ । स्व॒प्न॒ । दुः॒-स्वप्न्या॑त् । पा॒हि॒ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्मस्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( ग्राह्याः ) गठिया [ रोगविशेष ] का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है ॥ १ ॥ तू ( अन्तकः ) अन्त करने वाला ( असि ) है और तू ( मृत्युः ) मृत्यु [ के समान दुःखदायी ] ( असि ) है ॥ २ ॥ ( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( तम् ) उस ( त्वा ) तुझ को ( तथा ) वैसा ही ( सम् ) अच्छे प्रकार ( विद्म ) हम जानते हैं, ( सः ) सो तू ( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( नः ) हमें ( दुःस्वप्न्यात् ) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से ( पाहि ) बचा ॥ ३ ॥

---

१–इदं सूक्तं किञ्चिद् भेदेन गतं व्याख्यातं च—अ० ६ । ४६ । २ ( विद्म ) जानीमः ( ते ) तव ( स्वप्न ) हे निद्रे । हे आलस्य ( जनित्रम् ) जन्मस्थानम् ( ग्राह्याः ) अ० २ । ६ । १ । सन्धीनां ग्रहणशीलपीडायाः ( पुत्रः ) पुत्र इवोत्पन्नः ( यमस्य ) मृत्योः ( करणः ) करोतेर्ल्युः । कर्ता ॥

२—( अन्तकः ) अन्त, णिच्—ण्वुल् । अन्तयतीति अन्तकः । अन्तकरः ( असि ) ( मृत्युः ) मृत्युरिव दुःखप्रदः ( असि ) ॥

३—( तम् ) तादृशम् ( त्वा ) त्वाम् ( स्वप्न ) ( तथा ) तेन प्रकारेण ( सम् ) सम्यक् ( सः ) स त्वम् ( नः ) अस्मान् ( दुःस्वप्न्यात् ) दुःस्वप्न—यत् । दुष्टस्वप्नेषु भवात् कुविचारात् ( पाहि ) रक्ष ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कुपथ्य आदि करने से गठिया आदि रोग होते हैं, गठिया आदि से आलस्य और उससे अनेक विपत्तियां मृत्यु आदि होती हैं। इससे सब लोग दुःखों के कारण अति निद्रा आदि को खोज कर निकालें और केवल परिश्रम की निवृत्ति के लिये ही उचित निद्रा का आश्रय लेकर सदा सचेते रहें ॥ १—३ ॥

यह सूक्त कुछ भेद से आ चुका है-अथर्व ६। ४६। २॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।०।०॥४॥

०। जनित्रम्। निः-ऋत्याः। पुत्रः ०। ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्मस्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( निर्ऋत्याः ) निर्ऋति [ महामारी ] का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है ......[ म० २, ३ ] ॥ ४ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ४ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ॥ ५ ॥

०। जनित्रम्। अभूत्याः। पुत्रः। ० ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्मस्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( अभूत्याः ) अभूति [ असम्पत्ति ] का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है...... [ म० २, ३ ] ॥ ५॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ५ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ॥ ६ ॥

०। जनित्रम्। निः-भूत्याः। पुत्रः। ० ॥ ६ ॥

४—( निर्ऋत्याः ) कृच्छ्रापत्तेः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

५—( अभूत्याः ) असम्पत्त्याः। अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्म स्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( निर्भूत्याः ) निर्भूति [ हानि, नाश वा अभाव ] का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है......[ म० २, ३ ] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ६ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं परांभूत्याः पुत्रोऽसि ० । ० । ० ॥ ७ ॥

० । जनित्रम् । परा-भूत्याः । पुत्रः । ० ॥ ७ ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्म-स्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( पराभूत्याः ) पराभूति [ पराभव, हार ] का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है......[ म०-२, ३ ] ॥ ७ ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ७ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । देव-जामीनाम् । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ॥ ८ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥

अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥ ९ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि॥१०॥

तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न । दुः-स्वप्न्यात् । पाहि ॥ १० ॥

६—( निर्भूत्याः ) क्षित्याः । नाशस्य । अभावस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥
७—( पराभूत्याः ) पराजितेः । पराभवस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—( स्वप्न ) हे स्वप्न ! [ आलस्य ] ( ते ) तेरे ( जनित्रम् ) जन्म-स्थान को ( विद्म ) हम जानते हैं, तू ( देवजामीनाम् ) उन्मत्तों की गतियों का ( पुत्रः ) पुत्र और ( यमस्य ) मृत्यु का ( करणः ) करने वाला ( असि ) है ॥८॥ तू ( अन्तकः ) अन्त करने वाला ( असि ) है और तू ( मृत्युः ) मृत्यु [ के समान दुःखदायी ] ( असि ) है ॥ ९ ॥ ( स्वप्न ) हे स्वप्न [ आलस्य ] ( तम् ) उस ( त्वा ) तुझ को ( तथा ) वैसा ही ( सम् ) अच्छे प्रकार ( विद्म ) हम जानते हैं, ( सः ) सो तू ( स्वप्न ) हे स्वप्न ! ( नः ) हमें ( दुःस्वप्न्यात् ) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से ( पाहि ) बचा ॥ १० ॥

भावार्थ—मन्त्र १—३ के समान है ॥ ८—१० ॥

## सूक्तम् ६ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—११ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १—४ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ५ साम्नी पङ्क्तिः ; ६ निचृदार्ची बृहती ; ७ साम्नी बृहती ; ८ आसुरी जगती ; ९ आसुरी बृहती ; १० आर्च्युष्णिक् ; ११ आर्षी गायत्री ॥

रोगनाशनोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

**अजै॑ष्माद्यास॑नामा॒द्याभू॑मानो॑गसो व॒यम् ॥ १ ॥**

**अजै॑ष्म । अ॒द्य । अस॑नाम । अ॒द्य । अभू॑म । अना॑गसः । व॒यम् ॥ १ ॥**

भाषार्थ—( अद्य ) अब [ अनिष्ट को ] ( अजैष्म ) हम ने जीत लिया है, ( अद्य ) अब [ इष्ट को ] ( असनाम ) हम ने पा लिया है, ( वयम् ) हम ( अनागसः ) निर्दोष ( अभूम ) हो गये हैं ॥ १ ॥

---

८—( देवजामीनाम् ) दिवु मदे—पचाद्यच् । नियो मिः । उ० ४ । ४३ । या गतिप्रापणयोः—मि, आदेर्जत्वम् । देवानामुन्मत्तपुरुषाणां जामीनां यामीनां गतीनाम् ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

१—( अजैष्म ) वयं जितवन्तः ( अद्य ) इदानीम् ( असनाम ) षण संभक्तौ—लङ् । वयं लब्धवन्तः ( अद्य ) ( अभूम ) ( अनागसः ) निर्दोषाः ( वयम् ) पुरुषार्थिनः ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दोषों को छोड़ते हैं, वे अनिष्ट को जीत कर इष्ट प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

मन्त्र १ तथा २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं–८ । ४७ । १८ ॥

उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥
उषः । यस्मात् । दुःऽस्वप्न्यात् । अभैष्म । अप । तत् । उच्छतु ॥ २ ॥

भाषार्थ—(उषः) हे उषा ! [ प्रभात वेला ] (यस्मात्) जिस (दुःस्वप्न्यात्) दुष्ट स्वप्न में उठे कुविचार से (अभैष्म) हम डरे हैं, (तत्) वह (अप) दूर (उच्छतु) चला जावे ॥ २ ॥

भावार्थ—यदि किसी कुपथ्य वा रोग के कारण निद्राभंग होकर मस्तक में कुविचार घूमने लगें, मनुष्य उसका प्रतीकार प्रभात ही अर्थात् बहुत शीघ्र करें ॥ २ ॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह । ३ ॥
द्विषते । तत् । परा । वह । शपते । तत् । परा । वह ॥ ३ ॥

भाषार्थ—[हे उषा ! ] तू (तत्) वह [ कष्ट ] (द्विषते) [ वैद्यों से ] वैर करने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे, (तत्) वह (शपते) [ उन्हें ] कोसने वाले के लिये (परा वह) पहुंचा दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यों के शासन पर नहीं चलते, वे शीघ्र दुःख भोगते हैं ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

२—(उषः) हे प्रभातवेले (यस्मात्) (दुःस्वप्न्यात्) दुष्टस्वप्ने भवात् कुविचारात् (अभैष्म) वयं भयं प्राप्तवन्तः (अप) दूरे (तत्) भयम् (उच्छतु) गच्छतु ॥

३—(द्विषते) वैद्येभ्यः कुप्रीतिकारिणे (तत्) कष्टम् (परा वह) दूरे गमय (शपते) शापं कुर्वते । अन्यत् पूर्ववत् ॥

यम् । द्विष्मः । यत् । च । नः । द्वेष्टि । तस्मै । एनत् । गमयामः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( यम् ) जिस [ कुपथ्यकारी ] से ( द्विष्मः ) हम [ वैद्य लोग ] वैर करते हैं, ( च ) और ( यत्=यः ) जो ( नः ) हम से ( द्वेष्टि ) वैर करता है, ( तस्मै ) उसको ( एनत् ) यह [ कष्ट ] ( गमयामः ) हम जताते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—वैद्य लोग कह दें कि कुपथ्यकारी मनुष्य अवश्य कष्ट भोगेगा ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५॥

उषाः । देवी । वाचा । सम्-विदाना । वाक् । देवी । उषसा । सम्-विदाना ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( उषाः देवी ) उषा देवी [ उत्तम गुण वाली प्रभात वेला ] ( वाचा ) वाणी से ( संविदाना ) मिली हुयी और ( वाक् देवी ) वाक् देवी [ श्रेष्ठ वाणी ] ( उषसा ) प्रभात वेला से ( संविदाना ) मिली हुयी [होवे] ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रभात वेला को सत्य वाणी के साथ और सत्य-वाणी को प्रभात वेला के साथ संयुक्त करते हैं, अर्थात् जो प्रभात से लेकर दूसरी प्रभात तक सत्यवाणी से काम करते हैं, वे अवश्य सुखी रहते हैं ॥ ५ ॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

---

४—( यम् ) कुपथ्यसेविनम् (द्विष्मः) वैरयामः, वयं वैद्याः ( यत् ) अव्ययम् । यः ( च ) ( नः ) अस्मान् वैद्यान् ( द्वेष्टि ) वैरयति ( तस्मै ) कुपथ्यसेविने ( एनत् ) कष्टम् ( गमयामः ) ज्ञापयामः ॥

५—( उषाः ) प्रभातवेला ( देवी ) दिव्यगुणवती ( वाचा ) वाण्या सह ( संविदाना ) संगच्छमाना ( वाक् ) ( देवी ) (उषसा) प्रभातवेलया सह (संविदाना ) संगच्छमाना ॥

उषः । पतिः । वाचः । पतिना । सम्-विदानः । वाचः । पतिः । उषः । पतिना । सम्-विदानः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—( उषः=उषसः ) उषा का (पतिः) पति [ प्रभात उठने वाला मनुष्य ] ( वाचः ) वाणी के ( पतिना ) पति [ विद्याभ्यासी ] के साथ ( संविदानः ) मिला हुआ और ( वाचः ) वाणी का ( पतिः ) पति [ विद्याभ्यासी पुरुष ] ( उषः=उषसः ) उषा के ( पतिना ) पति [ प्रभात उठने वाले ] के साथ ( संविदानः ) मिला हुआ [ होवे ] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रभात वेला में उठकर वेदादि शास्त्रों को विचारें और वेदादि शास्त्र विचारने वाले प्रभात वेला में उठें, जिससे उनकी स्वस्थता और स्मृति बढ़ती रहे ॥ ६ ॥

ते॑ऽमुष्मै॒ परा॑ वहन्त्वरा॒यान् दु॒र्णाम्नः॑ स॒दान्वाः॑ ॥ ७ ॥

ते । अमुष्मै॑ । परा॑ । व॒ह॒न्तु॒ । अ॒रा॒यान् । दुः॒-नाम्नः॑ । स॒दान्वाः॑ ॥ ७ ॥

कु॒म्भीका॑ दू॒षीकाः॒ पीय॑कान् ॥ ८ ॥

कु॒म्भीकाः॑ । दू॒षीकाः॑ । पीय॑कान् ॥ ८ ॥

जा॒ग्र॒द्दु॒ष्व॒प्न्यं स्व॑प्नेदुष्व॒प्न्यम् ॥ ९ ॥

जा॒ग्र॒त्-दु॒स्व॒प्न्यम् । स्व॒प्ने॒-दु॒स्व॒प्न्यम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—( ते ) वे [ ईश्वर नियम ] ( अमुष्मै ) उस [ कुपथ्यकारी ] के लिये ( अरायान् ) क्लेशों, ( दुर्णाम्नः ) दुर्नामों [ अर्श आदि रोगों ], ( सदान्वाः )

---

६—( उषः ) विभक्तिलोपः । उषसः । प्रभातवेलायाः ( पतिः ) पालकः पुरुषः ( वाचः ) वाण्याः ( पतिना ) पालकेन पुरुषेण ( संविदानः ) संगच्छमानः ( वाचस्पतिः ) विद्याभ्यासी पुरुषः ( उषस्पतिना ) प्रभातबोधनशीलेन ( संविदानः ) ॥

७—( ते ) ईश्वरनियमाः ( अमुष्मै ) कुपथ्यसेविने ( परा वहन्तु ) दूरे प्रापयन्तु ( अरायान् ) शुदविस्पृहिगृहिभ्य आय्यः । उ० ३ । ९६ । ऋ हिंसायाम्

सदा चिल्लाने वाली पीड़ाओं [ रोग जिन में रोगी चिल्लाता है ] ॥ ७ ॥ ( कुम्भीकाः ) कुम्भीकाओं [ रोग जिस में पेट बटलो ही सा बजता है ], ( दूषीकाः ) दूषीकाओं [ जिन रोगों में रोगी गिरता जाता है ], ( पीयकान् ) अन्य दुःखदायी रोगों ॥ ८ ॥ ( जाग्रद्दुष्वप्न्यम् ) जागते में बुरे स्वप्न और ( स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ) सोते में बुरे स्वप्न को ॥९॥ ( परा वहन्तु—म० ७ ) दूर पहुंचावें ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर नियम को छोड़कर कुपथ्य करते, हैं वे अनेक महाक्लिष्ट रोग भोगते हैं ॥ ७–९ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०

अनागमिष्यतः । वरान् । अवित्तेः । सम्-कल्पान् । अमुच्याः । द्रुहः । पाशान् ॥ १० ॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

तत् । अमुष्मै । अग्ने । देवाः । परा । वहन्तु । वध्रिः । यथा । असत् । विथुरः । न । साधुः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—( अनागमिष्यतः ) न आने वाले ( वरान् ) वरदानों [ श्रेष्ठ कर्मफलों ] को, ( अवित्तेः ) निर्धनता के ( संकल्पान् ) विचारों को और

---

—आप्य, यलोपः । क्क शान् (दुर्णाम्नः) अ० ८ । ६ । १ । अर्श आदिरोगान् ( सदान्वाः ) अ० २ । १४ । १ । सदा नोनुवाः । सर्वदा नोनूयमानाः शब्दायमानाः पीडाः ॥

८—( कुम्भीकाः ) कुम्भी + कै शब्दे—क । कुम्भी उखेव कायन्ति शब्दायन्ते यासु ताः पीडाः ( पीयकान् ) पीयतिर्हिंसाकर्मा—निघ० ४ । २५ । कुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि । उ० २ । ३२ । पीयति—कुन् । हिंसकान् रोगान् ॥

९—( जाग्रद्दुष्वप्न्यम् ) जाग्रदवस्थायां दुष्टस्वप्नम् ( स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ) स्वप्नावस्थायां दुष्टस्वप्नम् ॥

१०—( अनागमिष्यतः ) अनागमनमिच्छतः ( वरान् ) श्रेष्ठफलान् ( अवित्तेः ) दरिद्रतायाः ( संकल्पान् ) विचारान् ( अमुच्याः ) मुच्लृ मोचने-

( अमुच्याः ) न छोड़ने वाले ( द्रुहः ) द्रोह [ अनिष्ट चिन्ता ] के ( पाशान् ) फन्दों को ॥ १० ॥ ( तत् ) इस [ सब दुःख ] को ( अमुष्मै ) उस [ कुपथ्यसेवी ] के लिये, ( अग्ने ) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! ( देवाः ) [ तेरे ] दिव्य नियम ( परा वहन्तु ) पहुंचावें, ( यथा ) जिस से ( न साधुः ) वह असाधु पुरुष ( वध्रिः ) निर्वीर्य और ( विधुरः ) व्याकुल ( असत् ) हो जावे ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कुपथ्यसेवी होवे, वह ईश्वर नियम के अनुसार दुष्ट कर्मों की अधिकता से श्रेष्ठ फल कभी न पावे, किन्तु दरिद्रता आदि महाक्लेशों में पड़कर घोर नरक भोगे ॥ १०, ११ ॥

## सूक्तम् ७ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ आर्षी पङ्क्तिः ; २ साम्न्यनुष्टुप् ; ३ आसुर्युष्णिक् ; ४ प्राजापत्या गायत्री ; ५ आर्च्युष्णिक् ; ६, ८, ९, ११ साम्नी बृहती ; ७ याजुषी गायत्री ; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

तेनै॒नं वि॑ध्याम्यभू॑त्यै॒नं वि॑ध्यामि॒ निर्भू॑त्यै॒नं वि॑ध्यामि॒ परा॑भूत्यै॒नं वि॑ध्यामि॒ ग्राह्यै॒नं वि॑ध्यामि॒ तम॑सै॒नं वि॑ध्यामि ॥ १ ॥

तेन॑ । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ । अभू॑त्या । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ । निः॒ऽभू॑त्या । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ । परा॑ऽभूत्या । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ । ग्राह्या॑ । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ । तम॑सा । ए॒न॒म् । वि॒ध्या॒मि॒ ॥ १ ॥

---

क, ङीप् । अमोचनशीलायाः ( द्रुहः ) अनिष्टचिन्तायाः (पाशान्) बन्धान् ॥

११—( तत् ) पूर्वोक्तं दुःखम् ( अमुष्मै ) तस्मै कुपथ्यसेविने ( अग्ने ) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ( देवाः ) दिव्यनियमाः ( परा वहन्तु ) प्रापयन्तु ( वध्रिः ) निर्वीर्यः (यथा) येन प्रकारेण ( असत् ) भूयात् ( विधुरः ) व्यथेः सम्प्रसारणं घः किच्च । उ० १ । ३९ । व्यथ भयसंचलनयोः—उरच्, कित् । व्याकुलः ( न साधुः ) असाधुः । दुष्टजनः ॥

भाषार्थ—(तेन) उस [ईश्वर नियम] से (एनम्) इस [कुमार्गी] को (अभूत्या) अभूति [असम्पत्ति] से (विध्यामि) मैं छेदता हूं, (एनम्) इस को (निर्भूत्या) निर्भूति [हानि वा नाश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (पराभूत्या) पराभूति [पराभव, हार] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (ग्राह्या) गठिया रोग से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस को (तमसा) अन्धकार [महाक्लेश] से (विध्यामि) छेदता हूं, (एनम्) इस [कुमार्गी] को [अन्य विपत्तियों से] (विध्यामि) मैं छेदता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—कुमार्गी दुराचारी लोग ईश्वर नियम से नाना विपत्तियां झेलते हैं ॥ १ ॥

**दे॒वाना॑मेनं घो॒रैः क्रू॒रैः प्रै॒षैर॑भि॒प्रेष्या॑मि ॥ २ ॥**

**दे॒वाना॑म् । ए॒न॒म् । घो॒रैः । क्रू॒रैः । प्र॒ऽए॒षैः । अ॒भि॒ऽप्रेष्या॑मि २**

भाषार्थ—(एनम्) इस [कुमार्गी] को (देवानाम्) [परमात्मा के] उत्तम नियमों के (घोरैः) घोर [भयानक] और (क्रूरैः) क्रूर [निर्दय] (प्रैषैः) शासनों से (अभिप्रेष्यामि) मैं सामने से प्राप्त होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—दुराचारी लोग परमात्मा के नियमों से घोर क्रूर क्लेशों में पड़ते हैं ॥ २ ॥

**वै॒श्वा॒न॒रस्यै॑नं॒ दंष्ट्र॑यो॒रपि॑ दधामि ॥ ३ ॥**

**वै॒श्वा॒न॒रस्य॑ । ए॒न॒म् । दंष्ट्र॑योः । अपि॑ । द॒धा॒मि॒ ॥ ३ ॥**

---

१—(तेन) ईश्वरनियमेन (एनम्) कुमार्गिणम् (विध्यामि) विदारयामि। पीडयामि। (अभूत्या) असम्पत्त्या (निर्भूत्या) हान्या (पराभूत्या) पराजित्या। पराभवेन (ग्राह्या) सन्धीनां रोगविशेषेण (तमसा) अन्धकारेण। महाक्लेशेन। अन्यत् पूर्ववत् ॥

२—(देवानाम्) ईश्वरस्य दिव्यनियमानाम् (एनम्) कुमार्गिणम् (घोरैः) भयानकैः (क्रूरैः) दयारहितैः (प्रैषैः) प्र+इष वाञ्छायां गतौ च—घञ्। शासनैः (अभिप्रेष्यामि) आभिमुख्येन प्राप्नोमि ॥

भाषार्थ—( एनम् ) इस [ कुमार्गी ] को ( वैश्वानरस्य ) सब नरों के हितकारी पुरुष के ( दंष्ट्रयोः ) दोनों डाढ़ों के बीच [ जैसे अन्न को ] ( अपि ) अवश्य ( दधामि ) धरता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—प्रजागण कुकर्मी जन को पकड़कर सब के हित के लिये राजा को देवें, वह उसे ऐसा नष्ट करे जैसे अन्न को डाढ़ों से कुचलते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ४। ३६। २॥

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥ एव । अनेव । अव । सा । गरत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( एव ) इस प्रकार से [ अथवा ] ( अनेव ) अन्य प्रकार से ( सा ) वह [ न्याय व्यवस्था ] [ कुमार्गी को ] ( अव गरत् ) निगल जावे ॥४॥

भावार्थ—राजा अपनी अनेक न्याय व्यवस्थाओं से दुष्टों का नाश करता रहे ॥ ४ ॥

योऽ३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । तम् । आत्मा । द्वेष्टु । यम् । वयम् । द्विष्मः । सः । आत्मानम् । द्वेष्टु ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( यः ) जो [ कुमार्गी ] ( अस्मान् ) हम से ( द्वेष्टि ) वैर करता है, ( तम् ) उस से [उस का] ( आत्मा ) आत्मा ( द्वेष्टु ) वैर करे, ( यम् ) जिस [ कुमार्गी ] से ( वयम् ) हम ( द्विष्मः ) वैर करते हैं, ( सः ) वह ( आत्मा-

३—( वैश्वानरस्य ) सर्वनरहितस्य पुरुषस्य ( एनम् ) कुमार्गिणम् ( दंष्ट्रयोः ) दन्तपङ्क्तिविशेषयोर्मध्ये ( अपि ) अवश्यम् ( दधामि ) धरामि ॥

४—( एव ) एवम् । अनेन प्रकारेण ( अनेव ) अनेवम् । अन्यप्रकारेण ( सा ) न्यायव्यवस्था ( अव गरत् ) विनाशयेत् ॥

५—( यः ) कुमार्गी ( अस्मान् ) धार्मिकान् ( द्वेष्टि ) वैरयति ( तम् ) दुष्टम् ( आत्मा ) तस्यात्मा ( द्वेष्टु ) वैरयतु ( यम् ) ( वयम् ) धार्मिकाः

नम् ) [ अपने ] आत्मा से (द्वेष्टु) वैर करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कुमार्गी पुरुष धर्मात्माओं का मार्ग छोड़ने से आप ही अपना वैरी बन जाता है ॥ ५ ॥

**निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥**

**निः । द्विषन्तम् । दिवः । निः । पृथिव्याः । निः । अन्तरिक्षात् । भजाम ॥ ६ ॥**

भाषार्थ—(द्विषन्तम्) वैर करने वाले [ कुमार्गी ] को (दिवः) आकाश से (निः) पृथक्, (पृथिव्याः) पृथिवी से (निः) पृथक् और (अन्तरिक्षात्) मध्यलोक से (निः भजाम) हम भाग रहित करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—शूर धर्मात्मा लोग दुराचारियों को आकाश मार्ग, पृथिवी-मार्ग और अन्य मार्ग से सर्वथा निकाल देवें ॥ ६ ॥

**सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥ सु-यामन् ॥ चाक्षुष ॥ ७ ॥**

**इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥**

**इदम् । अहम् । आमुष्यायणे । अमुष्याः । पुत्रे । दुः-स्वप्न्यम् । मृजे ॥ ८ ॥**

भाषार्थ—(सुयामन्) हे सुमार्गी ! (चाक्षुष) हे नेत्र वाले ! [विद्वान्] ॥ ७ ॥ (इदम्) अब (अहम्) मैं (आमुष्यायणे) अमुक पुरुष के सन्तान,

---

(द्विष्मः) वैरयामः (सः) दुराचारी (आत्मानम्) स्वकीयमात्मानम् (द्वेष्टु) ॥

६—(निः) पृथक् (द्विषन्तम्) वैरयन्तम् (दिवः) आकाशात् (निः) (पृथिव्याः) भूलोकात् (अन्तरिक्षात्) मध्यलोकात् (निर्भजाम) भागरहितं कुर्याम ॥

७—(सुयामन्) या गतौ—मनिन् । हे सुमार्गिन् (चाक्षुष) हे नेत्रवन् । दूरदर्शिन् ॥

८—(इदम्) इदानीम् (अहम्) धर्मात्मा (आमुष्यायणे) अमुष्य पुत्र-

( अमुष्याः ) अमुक स्त्री के ( पुत्रे ) [ कुमार्गी ] पुत्र पर ( दुःस्वप्न्यम् ) दुष्ट स्वप्न [ आलस्य आदि ] में उठे कुविचार को ( मृजे ) शोधता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—धर्मात्मा दूरदर्शी लोग कुमार्गी जन के कुल, माता पिता आदि का पता लगाकर यथोचित दण्ड देवें ॥ ७, ८ ॥

यद्दोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥

यत् । अदः-अदः । अभि-अगच्छन् । यत् । दोषा । यत् । पूर्वाम् । रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यत् । जाग्रत् । यत् । सुप्तः । यत् । दिवा । यत् । नक्तम् १०

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥

यत् । अहः-अहः । अभि-गच्छामि । तस्मात् । एनम् । अव । दये ॥ ११ ॥

भाषार्थ—( यत् ) जैसे ( अदोअदः ) उस उस समय पर ( यत् ) जो [ कष्ट ] ( दोषा ) रात्रि में, ( यत् ) जो [ कष्ट ] ( पूर्वां रात्रिम् ) रात्रि के पूर्व भाग में ( अभ्यगच्छन् ) उन [ पूर्वज लोगों ] ने सामने से पाया है ॥ ९ ॥ [ वैसे ही ] ( यत् ) जो [ कष्ट ] ( जाग्रत् ) जागता हुआ, ( यत् ) जो [ कष्ट ] ( सुप्तः ) सोता हुआ मैं ( यत् ) जो [ कष्ट ] ( दिवा ) दिन में, ( यत् ) जो

---

पस्य सन्ताने ( अमुष्याः ) अमुकस्त्रियाः ( पुत्रे ) कुमार्गिणि सन्ताने ( दुःस्वप्न्यम् ) दुष्टस्वप्ने भवं कुविचारम् ( मृजे ) शोधयामि ॥

९—( यत् ) यथा ( अदोअदः ) तस्मिंस्तस्मिन् समये ( अभ्यगच्छन् ) ते पूर्वजा आभिमुख्येन प्राप्नुवन् ( यत् ) कष्टम् ( दोषा ) रात्रौ ( यत् ) ( पूर्वाम् ) पूर्वभागभवायाम् ( रात्रिम् ) ॥

१०—( यत् ) कष्टम् ( जाग्रत् ) जागरणयुक्तः सन् ( सुप्तः ) निद्रालुः सन् ( दिवा ) दिने ( नक्तम् ) रात्रौ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

( नक्तम् ) रात्रि में, ॥ १० ॥ ( यत् ) जो ( अहरहः ) दिन दिन ( अभिगच्छामि ) सामने से पाता हूं; ( तस्मात् ) उसी कारण से ( एनम् ) इस [ कुमार्गी ] को ( अव दये ) मार गिराता हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे पूर्वज विद्वान् लोग बड़े बड़े कष्ट सहकर दुराचारी असुरों को हराते आये हैं, वैसे ही मनुष्य क्लेश सहकर दुष्टों को हराकर शिष्टों का पालन करते रहें ॥ ९, १०, ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

तम् । जहि । तेन । मन्दस्व । तस्य । पृष्टीः । अपि । शृणीहि १२

भाषार्थ—( तम् ) उस [ कुमार्गी ] को ( जहि ) नाश करदे; ( तस्य ) उसकी ( पृष्टीः ) पसलियां ( अपि ) सर्वथा ( शृणीहि ) तोड़ डाल, ( तेन ) उस [ शूर कर्म ] से ( मन्दस्व ) तू चल ॥ १२ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् शूर लोग दुष्टों को नाश करके सदा आगे बढ़ते रहें ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ १३ ॥

भाषार्थ—( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( मा जीवीत् ) न जीता रहे, ( तम् ) उसको ( प्राणः ) प्राण ( जहातु ) छोड़ देवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—प्रतापी राजा दुराचारियों को सर्वथा नाश करके प्रजा पालन करे ॥ १३ ॥

---

११—( यत् ) कष्टम् ( अहरहः ) प्रतिदिनम् ( अभिगच्छामि ) अहमाभिमुख्येन प्राप्नोमि ( तस्मात् ) कारणात् ( एनम् ) दुष्टम् ( अव दये ) विनाशयामि ॥

१२—( तम् ) कुमार्गिणम् ( जहि ) नाशय ( तेन ) शूरकर्मणा ( मन्दस्व ) मदि स्तुतिगत्यादिषु । गच्छ ( तस्य ) दुष्टस्य ( पृष्टीः ) पार्श्वास्थीनि ( अपि ) सर्वथा ( शृणीहि ) विदारय ॥

१३—( सः ) दुष्टः ( मा जीवीत् ) नैव प्राणान् धारयेत् ( तम् ) दुष्टम् ( प्राणः ) जीवनम् ( जहातु ) त्यजतु ॥

सूक्तम् ८ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—३३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ जितमित्यादि १, ५—३० ब्राह्म्यनुष्टुप् ; २, ५—२९, ३१ विराडार्षी गायत्री ; ३ प्राजापत्या गायत्री ; तस्येत्यादि ४—२९, ३३ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ; स इत्यादि ५, ६, ७, १२, १४, १६, २०, २२, २७ आसुरी जगती ; स इत्यादि ८, १०, १३, २१, २३, २४, २५ आसुरी त्रिष्टुप् ; स इत्यादि ९, १५, १७, १८, १९, २६, ३२ आसुरी पङ्क्तिः ; २८, २९ याजुषी जगती ॥

शत्रुनाशनोपदेशः—शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्-भिन्नम् । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्र-जाः । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् । अमुष्याः । पुत्रम् । असौ । यः ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

सः । ग्राह्याः । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ४ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ४ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ वस्तु ( अस्माकम् ) हमारा, ( उद्भिन्नम् ) निकाली किया हुआ धन ( अस्माकम् ) हमारा, ( ऋतम् ) वेद-ज्ञान ( अस्माकम् ) हमारा, ( तेजः ) तेज ( अस्माकम् ) हमारा, ( ब्रह्म ) अन्न ( अस्माकम् ) हमारा, ( स्वः ) सुख ( अस्माकम् ) हमारा, ( यज्ञः ) यज्ञ [ देव-पूजा, संगतिकरण और दान ] ( अस्माकम् ) हमारा, ( पशवः ) सब पशु [ गौ घोड़ा आदि ] ( अस्माकम् ) हमारे, ( प्रजाः ) प्रजागण ( अस्माकम् ) हमारे और ( वीराः ) वीर लोग ( अस्माकम् ) हमारे [ होवें ] ॥ १ ॥ ( तस्मात् ) उस [ पद ] से ( अमुम् ) अमुक, ( अमुम् ) अमुक पुरुष, ( आमुष्यायणम् ) अमुक पुरुष के सन्तान, ( अमुष्योः ) अमुक स्त्री के ( पुत्रम् ) पुत्र को ( निः भजामः ) हम भागरहित करते हैं, ( असौ यः ) वह जो [ कुमार्गी ] है ॥ २ ॥ ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( ग्राह्याः ) गठिया रोग के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ॥ ३ ॥ ( तस्य ) उस [ कुमार्गी ] के ( इदम् ) अब ( वर्चः ) प्रताप, ( तेजः ) तेज, ( प्राणम् ) प्राण और ( आयुः ) जीवन को ( नि वेष्टयामि ) मैं लपेटे लेता हूं, ( इदम् ) अब ( एनम् )

१—( जितम् ) जयेन प्राप्तं वस्तु ( अस्माकम् ) धर्मात्मनाम् ( उद्भिन्नम् ) उद्भेदनं स्फुरणम् । आयधनम् ( ऋतम् ) वेदज्ञानम् ( तेजः ) ( ब्रह्म ) अन्नम्—निघ० २ । ७ ( स्वः ) सुखम् ( यज्ञः ) देवपूजासंगतिकरणदानव्यवहारः ( पशवः ) गवाश्वादयः ( प्रजाः ) प्रजागणाः ( वीराः ) वीरपुरुषाः ( अस्माकम् ) भवन्तु इति शेषः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२—( तस्मात् ) प्रसिद्धात् पदात् ( अमुम् ) अमुकपुरुषम् ( अमुम् ) अमुकपुरुषम् ( निर्भजामः ) भागरहितं कुर्मः ( आमुष्यायणम् ) अमुक पुरुषस्य सन्तानम् ( अमुष्याः ) अमुकस्त्रियाः ( पुत्रम् ) सुतम् ( असौ ) ( यः ) कुमार्गी पुरुषः ॥

३—( सः ) कुमार्गी ( ग्राह्याः ) ग्राहीरोगस्य ( पाशात् ) बन्धनात् ( मा मोचि ) न मुक्तो भवतु ॥

४—( तस्य ) कुमार्गिणः पुरुषस्य ( इदम् ) इदानीम् ( वर्चः ) प्रतापम् ( तेजः ) प्रकाशम् ( प्राणम् ) श्वासव्यापारम् ( आयुः ) जीवनम् ( नि ) नितराम् ( वेष्टयामि ) आच्छादयामि ( इदम् ) इदानीम् ( एनम् ) कुमार्गिणम् ( अधराञ्चम् )

इस [ कुमार्गी ] को ( अधराञ्चम् ) नीचे ( पादयामि ) लतियाता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् धर्मवीर राजा सुवर्ण आदि धन और सब सम्पत्ति का सुन्दर प्रयोग करे और अपने प्रजागण और वीरों को सदा प्रसन्न रख कर कुमार्गियों को कष्ट देकर नाश करे ॥ १–४ ॥

१—आगे के सब मन्त्रों का भावार्थ इस भावार्थ के समान है ॥

२—मन्त्र १, २, ४ कुछ भेद से आ चुके हैं–अ० १० । ५ । ३६ ॥

जितम् ० । ० । स निर्ऋ॑त्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ५ ॥

० । सः । निः-ऋ॑त्याः । पाशात् । ० ॥ ५ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( निर्ऋत्याः ) निर्ऋति [ महामारी ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ५ ॥

जितम् ० । ० सोऽभू॑त्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ६ ॥

० । सः । अभू॑त्याः । पाशात् । ० ॥ ६ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( अभूत्याः ) अभूति [ असम्पत्ति ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ६ ॥

जितम् ० । ० । स निर्भू॑त्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ७ ॥

० । सः । निः-भू॑त्याः । पाशात् । ० ॥ ७ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( निर्भूत्याः ) निर्भूति [ हानि ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ७ ॥

---

अधोगतम् ( पादयामि ) पादेन प्रहरामि ॥

५—( निर्ऋत्याः ) कृच्छ्रापत्तेः । महामारीरोगस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

६—( अभूत्याः ) असम्पत्तेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

७—( निर्भूत्याः ) हानेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

जितम् ० । ० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ८ ॥

० । सः । परा-भूत्याः । पाशात् । ० ॥ ८ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ]। ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( पराभूत्याः ) पराभूति [ हार ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ८ ॥

जितम् ० । ० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ ९ ॥

० । सः । देव-जामीनाम् । पाशात् । ० ॥ ९ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( देवजामीनाम् ) उन्मत्तों की गतियों के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ९ ॥

जितम् ० । ० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥ १० ॥

० । सः । बृहस्पतेः । पाशात् । ० ॥ १० ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( बृहस्पतेः ) बृहस्पति [ बड़ी विद्याओं के रक्षक सेनाध्यक्ष ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ १० ॥

जितम् ० । ० स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ११ ॥

० । सः । प्रजा-पतेः । पाशात् । ० ॥ ११ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( प्रजापतेः ) प्रजापति [ प्रजापालक सेनापति ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ ११ ॥

---

८—( पराभूत्याः ) पराजितेः । पराभवस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

९—(देवजामीनाम्) सू०५। म०८। उन्मत्तपुरुषाणां गतीनाम् । अन्यत्पूर्ववत् ।

१०—(बृहस्पतेः) बृहतीनां विद्यानां पालकस्य सेनाध्यक्षस्य । अन्यत् पूर्ववत्।

११—( प्रजापतेः ) प्रजापालकस्य सेनापतेः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

जितम् ० । ० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १२ ॥

० । सः । ऋषीणाम् । पाशात् । ० ॥ १२ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( ऋषीणाम् ) ऋषियों [ सन्मार्ग दर्शक महात्माओं ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।…… [ म० ४ ] ॥ १२ ॥

जितम् ० । ० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १३ ॥

० । सः । आर्षेयाणाम् । पाशात् । ० ॥ १३ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( आर्षेयाणाम् ) आर्षेय शास्त्रों [ऋषिप्रणीत धर्मशास्त्रों] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४] ॥ १३ ॥

जितम् ० । ० सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १४ ॥

० । सः । अङ्गिरसाम् । पाशात् । ० ॥ १४ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( अङ्गिरसाम् ) अङ्गिराओं [ महाज्ञानी युद्धकुशलों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ १४ ॥

जितम् ० । ० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १५ ॥

० । सः । आङ्गिरसानाम् । पाशात् । ० ॥ १५ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( आङ्गिरसानाम् ) अङ्गिराओं [ महाज्ञानियों ] के शिक्षित योद्धाओं

---

१२—( ऋषीणाम् ) सन्मार्गदर्शकमहात्मनाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१३—( आर्षेयाणाम् ) ऋषिप्रणीतानां धर्मशास्त्राणाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१४—( अङ्गिरसाम् ) अ० २ । १२ । ४ । अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च । उ० ४ । २३६ । अगि गतौ—असि, इरुट् । महाज्ञानिनां युद्धकुशलानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१५—( आङ्गिरसानाम् ) अङ्गिरस्—अण् । महाज्ञानिभिः शिक्षितयोद्-

के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ १५ ॥

जितम् ० । ० सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १६ ॥

० । सः । अथर्वणाम् । पाशात् । ० ॥ १६ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( अथर्वणाम् ) अथर्वाओं [ निश्चल स्वभाव वाले सेना नायकों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ १६ ॥

जितम् ० । ० । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । ० ॥१७॥

० । सः । आथर्वणानाम् । पाशात् । ० ॥ १७ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( आथर्वणानाम् ) अथर्वाओं के सेना दलों के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ १७ ॥

जितम् ० । ० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १८ ॥

० । सः । वनस्पतीनाम् । पाशात् । ० ॥ १८ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( वनस्पतीनाम् ) वनस्पतियों [ वृक्षों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।......[ म० ४ ] ॥ १८ ॥

---

धृणाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१६—( अथर्वणाम् ) अ० ४ । १ । ७ । अथर्वाणोऽथनवन्तस्थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः—निरु० ११ । १८ । आतमनिषदध्वनिपृशकिभ्यो वनिप् ।उ० ४ । ११२ । अथर्व चरणे=गतौ-वनिप् । वलोपो विकल्पेन । निश्चलस्वभावानां सेना-नायकानाम् ॥

१७—( आथर्वणानाम् ) अ० ४ । ३ । ७ । अथर्वन्—अण् । अन् । पा० ६ । ४ । १६७ । इनः प्रकृतिभावः । अथर्वणां निश्चलस्वभावसेनानायकानां गणानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१८—( वनस्पतीनाम् ) वृक्षाणाम् । अन्यद् पूर्ववत् ॥

जितम् ० । ० । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ १९ ॥

० । सः । वानस्पत्यानाम् । पाशात् । ० ॥ १९ ॥

भावार्थ— ( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( वानस्पत्यानाम् ) वनस्पतियों से उत्पन्न [ काष्ठ, पुष्प, फल आदिकों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥१९॥

जितम् ० । ० । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २०

० । सः । ऋतूनाम् । पाशात् । ० ॥ २० ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( ऋतूनाम् ) ऋतुओं [ वसन्त आदिकों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ २० ॥

जितम् ० । ० । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २१ ॥

० । सः । आर्तवानाम् । पाशात् । ० ॥ २१ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( आर्तवानाम् ) ऋतुओं में उत्पन्न [ शीत, उष्ण, पुष्प फल, आदिकों ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे । ……[ म० ४ ] ॥ २१ ॥

जितम् ० । ० । स मासानां पाशान्मा मोचि । ० ॥ २२ ॥

० । सः । मासानाम् । पाशात् । ० ॥ २२ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह

१९—( वानस्पत्यानाम् ) वृक्षेभ्य उत्पन्नकाष्ठपुष्पफलादिकानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२०—( ऋतूनाम् ) वसन्तादिकालानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२१—( आर्तवानाम् ) ऋतुषूत्पन्नानां शीतोष्णपुष्पफलादीनाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२२—( मासानाम् ) वर्षावयवानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

[ कुमार्गी ] ( मासानाम् ) महीनों के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे।......[ म० ४ ] ॥ २२ ॥

जितम् ० । ० सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । ० । २३ ॥

० । सः । अर्ध-मासानाम् । पाशात् । ० ॥ २३ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( अर्धमासानाम् ) आधे महीनों के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे। ......[ म० ४ ] ॥ २३ ॥

जितम् ० । ० । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २४ ।

० । सः । अहोरात्रयोः । पाशात् । ० ॥ २४ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( अहोरात्रयोः ) दिन और रात्रि के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे।......[ म० ४ ] ॥ २४ ॥

जितम् ० । ० । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । ० ॥२५॥

० । सः । अह्नोः । सम्-यतोः । पाशात् । ० ॥ २५ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ......[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( संयतोः ) मिले हुये ( अह्नोः ) दो दिन [ दो समय के संयोग ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे।......[ म० ४ ] ॥ २५ ॥

जितम् ० । ० । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । ० ॥२६॥

० । सः । द्यावापृथिव्योः । पाशात् । ० ॥ २६ ॥

---

२३—( अर्धमासानाम् ) मासावयवानाम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२४—( अहोरात्रयोः ) रात्रिदिवसयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२५—( अह्नोः ) दिनयोः। कालयोः ( संयतोः ) यमेः क्विप् । संयुक्तयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( द्यावापृथिव्योः ) सूर्य और पृथिवी के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ २६ ॥

**जितम् ० । ० स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २७ ॥**

**० । सः । इन्द्राग्न्योः । पाशात् । ० ॥ २७ ॥**

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( इन्द्राग्न्योः ) बिजुली और भौतिक अग्नि के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ २७ ॥

**जितम् ० । ० स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । ० ॥ २८ ॥**

**० । सः । मित्रावरुणयोः । पाशात् । ० ॥ २८ ॥**

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( मित्रावरुणयोः ) प्राण और अपान [ श्वास प्रश्वास के कष्ट ] के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ २८ ॥

**जितम् ० । ० । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । ० ॥२९॥**

**० । सः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशात् । ० ॥ २९ ॥**

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ……[ म० १, २ ] । ( सः ) वह [ कुमार्गी ] ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ ( राज्ञः ) राजा के ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ।……[ म० ४ ] ॥ २९ ॥

**जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मा-स्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं**

---

२६—( द्यावापृथिव्योः ) सूर्यपृथिव्योः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२७—( इन्द्राग्न्योः ) विद्युदग्न्योः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२८—( मित्रावरुणयोः ) प्राणापानयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२९—( राज्ञः ) भूपतेः ( वरुणस्य ) श्रेष्ठस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

वीरा अस्माकम् ॥ ३० ॥

० । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्र-जाः । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ ३० ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् । अमुष्याः । पुत्रम् । असौ । यः ॥ ३१ ॥

स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥

सः । मृत्योः । पड्वीशात् । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३२ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३३ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि । इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३३ ॥

भावार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ वस्तु ( अस्माकम् ) हमारा, ( उद्भिन्नम् ) निकासी किया हुआ धन ( अस्माकम् ) हमारा, ( ऋतम् ) वेदज्ञान ( अस्माकम् ) हमारा, ( तेजः ) तेज ( अस्माकम् ) हमारा, ( ब्रह्म ) अन्न ( अस्माकम् ) हमारा, ( स्वः ) सुख ( अस्माकम् ) हमारा, ( यज्ञः ) यज्ञ [ देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान ] ( अस्माकम् ) हमारा, ( पशवः ) सब पशु [ गौ, घोड़ा आदि ] ( अस्माकम् ) हमारे, ( प्रजाः ) प्रजागण ( अस्माकम् ) हमारे और ( वीराः ) वीर लोग ( अस्माकम् ) हमारे [ होवें ]—[ म० १ ] ॥ ३० ॥ ( तस्मात् ) उस [ पद ] से ( अमुम् ) अमुक ( अमुम् ) अमुक पुरुष, ( आमुष्यायणम् ) अमुक पुरुष के सन्तान, ( अमुष्याः ) अमुक स्त्री के ( पुत्रम् ) पुत्र

को ( निः भजामः ) हम भाग रहित करते हैं, ( असौ यः ) वह जो [ कुमार्गी ] है—[ म० २ ] ॥ ३१ ॥ ( सः ) वह [ कुमार्गी ] (मृत्योः) मृत्यु की(पड्वीशात्) बेड़ी के प्रवेश वाले ( पाशात् ) बन्धन से ( मा मोचि ) न छूटे ॥ ३२ ॥ ( तस्य ) उस [ कुमार्गी ] के ( इदम् ) अब ( वर्चः ) प्रताप, ( तेजः ) तेज, ( प्राणम् ) प्राण और ( आयुः ) जीवन को ( नि वेष्टयामि ) मैं लपेटे लेता हूं, ( इदम् ) अब ( एनम् ) इस [ कुमार्गी ] को ( अधराञ्चम् ) नीचे ( पादयामि ) लतियाता हूं—[ म० ४ ] ॥ ३३ ॥

**भावार्थ**—म० १—४ के समान ॥ ३०—३३ ॥

## सूक्तम् ९ [ पर्यायसूक्तम् ] ॥

१—४ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ साम्नी त्रिष्टुप्; २ आर्च्युष्णिक्; ३ साम्नी गायत्री; ४ आर्च्युष्णिक् ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

जितम॒स्माक॒मुद्भि॑न्नम॒स्माक॑म॒भ्य॑ष्ठां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना॒ अरा॑तीः॥१

जितम् । अ॒स्माक॑म् । उत्ऽभि॑न्नम् । अ॒स्माक॑म् । अ॒भि । अ॒स्था॒म् । विश्वाः॑ । पृत॑नाः । अरा॑तीः ॥ १ ॥

भाषार्थ—( जितम् ) जय किया हुआ वस्तु ( अस्माकम् ) हमारा और ( उद्भिन्नम् ) निकासी किया हुआ धन ( अस्माकम् ) हमारा [ हो ], (विश्वाः) [ शत्रुओं की ] सब ( पृतनाः ) सेनाओं और ( अरातीः ) कंजूसियों को ( अभि अस्थाम् ) मैं ने रोक दिया है ॥ १ ॥

भावार्थ—पराक्रमी वीर पुरुष शत्रुओं को जीतकर और उन से कर लेकर अपने वश में रक्खे ॥ १ ॥

यह मन्त्र आ चुका है-अ० १० । ५ । ३६ ॥

तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह पू॒षा मा॑ धात् सुकृ॒तस्य॑ लो॒के ॥२॥

तत् । अ॒ग्निः । आ॒ह॒ । तत् । ऊं॒ इति॑ । सोमः॑ । आ॒ह॒ ।

३२—( मृत्योः ) मरणस्य ( पड्वीशात् ) अ० ६ । ९६ । २ । सर्वेरडिः । उ० १ । १३४ । पश बन्धने—अटि, डित्+ विश प्रवेशे—क, दीर्घः । पाशप्रवेशयुक्तात् । अन्यत् पूर्ववत्—म० १—४ ॥

१—( जितम् ) जयेन प्राप्तम् ( अस्माकम् ) धर्मात्मनाम् ( उद्भिन्नम् ) उद्भेदनं स्फुरणम् । आयधनम् ( अस्माकम् ) (अभि अस्थाम्) अभिभूतवानस्मि ( विश्वाः ) सर्वाः ( पृतनाः ) शत्रुसेनाः ( अरातीः ) अदानशीलताः ॥

पूषा । मा । धातु । सु-कृतस्य । लोके ॥ २ ॥

भाषार्थ—( तत् ) यह ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ( आह ) कहता है, ( तत् उ ) वही ( सोमः ) सर्वोत्पादक परमात्मा ( आह ) कहता है, ( पूषा ) पोषण करने वाला जगदीश्वर ( मा ) मुझे ( सुकृतस्य ) पुण्य कर्म के ( लोके ) लोक [ समाज ] में ( धातु ) रक्खे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा निरन्तर आज्ञा देता है कि मनुष्य सदा धर्मात्माओं के समाज में रह कर उन्नति करे ॥ २ ॥

इस मन्त्र का कुछ भाग आ चुका है–अ० ८ । ५ । ५ ॥

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

अगन्म । स्वः । स्वः । अगन्म । सम् । सूर्यस्य । ज्योतिषा । अगन्म ॥ ३ ॥

भाषार्थ—( स्वः ) सुख [ तत्त्वज्ञान का आनन्द ] ( अगन्म ) हम पावें और ( स्वः ) सुख [ मोक्ष आनन्द ] ( अगन्म ) हम पावें और ( सूर्यस्य ) सर्व–प्रेरक परमात्मा की ( ज्योतिषा ) ज्योति से ( सम् अगन्म ) हम मिल जावें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ तत्त्वज्ञानी होकर मोक्ष सुख पावें और परमात्मा के दर्शन के भागी होवें ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

वस्यः-भूयाय । वसु-मान् । यज्ञः । वसु । वंशिषीय । वसु-मान् । भूयासम् । वसु । मयि । धेहि ॥ ४ ॥

---

२—( तत् ) इदम् ( अग्निः ) ज्ञानस्वरूपपरमेश्वरः ( आह ) ब्रवीति । उपदिशति ( तत् ) ( उ ) एव ( सोमः ) सर्वोत्पादकः परमात्मा ( आह ) ( पूषा ) सर्वपोषकजगदीश्वरः ( मा ) माम् ( धातु ) दध्यात् ( सुकृतस्य ) पुण्यकर्मणः ( लोके ) समाजे ॥

३—( अगन्म ) छन्दसि लुङ्लङ्लिटः । पा० ३ । ४ । ६ । लिङर्थे लुङ् । गच्छेम । प्राप्नुयाम ( स्वः ) तत्त्वज्ञानसुखम् ( स्वः ) मोक्षसुखम् ( अगन्म ) प्राप्नुयाम ( सम् ) संगत्य ( सूर्यस्य ) सर्वप्रेरकस्य परमात्मनः ( ज्योतिषा ) तेजसा ( अगन्म ) प्राप्नुयाम ॥

भाषार्थ—( वस्योभूयाय ) अधिक श्रेष्ठ पद पाने के लिये [ हमारा ] ( यज्ञः ) यज्ञ [ देवपूजा, संगतिकरण और दानव्यवहार ] ( वसुमान् ) श्रेष्ठ गुण वाला [ हो ], ( वसु ) श्रेष्ठ पद ( वंशिषीय ) मैं मांगूं, ( वसुमान् ) श्रेष्ठ पद वाला ( भूयासम् ) मैं हो जाऊं, [ हे परमात्मन् ! ] ( वसु ) श्रेष्ठ पद ( मयि ) मुझ में ( धेहि ) धारण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा में विश्वास कर के यह प्रयत्न करें कि व परोपकार द्वारा संसार के भीतर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पद पावे ॥ ४ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

## इति षोडशं काण्डम् ॥

---

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम श्री सयाजी राव गायक-
वाड़ाधिष्ठित बड़ोदे पुरीगतश्रावणमासदक्षिणापरीक्षायाम्
ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्री पण्डित

**क्षेमकरणदास त्रिवेदिना**

कृते अथर्ववेदभाष्ये षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

---

इदं काण्डं प्रयागनगरे मार्गशीर्षकृष्णद्वितीयायां तिथौ १९७५
[ पञ्चसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके ] विक्रमीये संवत्सरे
धीर-वीर-चिरप्रतापि-महायशस्वि

**श्रीराजराजेश्वर पञ्चमजार्ज महोदयस्य**

सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात् ॥

---

मुद्रितम्—मार्गशीर्षशुक्ला ११ संवत् १९७५ ता० १४ दिसम्बर १९१८ ॥

---

४—( वस्योभूयाय ) वसु-ईयसुन्, ईलोपः + भू सत्तायां प्राप्तौ च-क्यप् । श्रेष्ठतरपदप्राप्तये ( वसुमान् ) श्रेष्ठगुणवान् ( यज्ञः ) देवपूजासंगतिकरणदान-व्यवहारः ( वसु ) श्रेष्ठपदम् ( वंक्षिषीय ) अ० ६ । १ । १४ । वनु याचने-आशीर्लिङि छान्दसं रूपम् । अहं वनिषीय । याचिषीय ( वसुमान् ) श्रेष्ठपदयुक्तः ( वसु ) श्रेष्ठपदम् ( मयि ) पुरुषार्थिनि ( धेहि ) धारय ॥

## अथर्ववेदभाष्य सम्मतियां ॥

**श्रीमती आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-९१ की प्रति।**

ला० दीवान चन्द्र प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे, उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जावें॥

---

**श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर. अन्तरंग सभा ता० ४ जून १९१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और (ब) की लिपि।**

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

**लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५८७६ प्राप्त २० जूलाई १९१६ ई०)**

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर, नमस्ते!

आप को ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आप ने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य का करने का प्रयत्न किया है। भाष्य काण्डों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्यसमाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटि के साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। जिसके कारण त्रिवेदी जी अर्थ हानि उठा रहे हैं। भाष्य के ग्राहक बहुत कम हैं। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मानुरागी श्री त्रिवेदी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहक बनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाजों के पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लूकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य मंगाइये।

भवदीय—

**नन्दलाल सिंह,**

BSc. LL. B. उपमन्त्री।

चिट्ठी संख्या ६५० तिथि १०—१२—१५१४। कार्यालय श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध, बुलन्दशहर।

आपका पत्र संख्या १०१ तथा अथर्ववेद भाष्य का तृतीय कांड मिला। इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद है। वास्तव में आप आर्यसमाज के साहित्य को समृद्धि शाली बनाने में बड़ा कार्य कर रहे हैं, आपकी विद्वत्ता और कृपा के लिये आर्य संसार ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शिखा सूत्र धारी को आभारी होना चाहिये। ईश्वर आप को उत्तरोत्तर उस महत्व पूर्ण कार्य के सम्पादन और समाप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करें, ऐसे उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशन को आप सदैव जारी रक्खें यही प्रार्थना है।

भवदीय

**मदनमोहन सेठ**

(एम० ए०, एल० एल० बी०) मन्त्री सभा।

---

श्रीमान् पण्डित **तुलसीराम स्वामी**—प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त, सामवेद भाष्यकार, सम्पादक वेदप्रकाश, मेरठ—१९१३।

ऋग्यजुर्वेद का भाष्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कृत और भाषा में किया है, सामवेद का श्री पं० तुलसीराम स्वामी ने किया है, अथर्ववेद के भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी। पं० क्षेमकरणदास जी प्रयाग निवासी ने इस अभाव को दूर करना आरम्भ कर दिया है। भाष्य का क्रम अच्छा है। यदि इसी प्रकार समस्त भाष्य बन गया, जो हमारी समझ में कठिन है, तो चारों वेदों के भाषा भाष्य मिलने लगेंगे, आर्यों का उपकार होगा।

---

श्रीयुत महाशय **नारायणप्रशाद जी**—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन मथुरा—उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त। आर्यमित्र आगरा, २४ जनवरी १९१३।

श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग निवासी, ऋक्, साम तथा अथर्ववेद सम्बन्धी परीक्षोत्तीर्ण अथर्ववेद का भाषा भाष्य करते हैं, मैं ने सम्पूर्ण [प्रथम] कांड का पाठ किया। त्रिवेदी जी का भाष्य ऋषि दयानन्द जी की शैली के अनुसार भावपूर्ण संक्षिप्त और स्पष्टतया प्रकट करने वाला है कि मन्त्र के किस शब्द के स्थान में भाषा का कौनसा शब्द आया, फिर नोटों में व्याकरण तथा निरुक्त के प्रमाण, प्रारम्भ में एक उपयोगी भूमिका दे देने से भाष्य की उपयोगिता और भी बढ़ गई है, निदान भाष्य अत्युत्तम, आर्यसमाज का पक्षपोषक और इस योग्य है कि प्रत्येक आर्यसमाज उसकी एक २ पोथी (कापी) अपने पुस्तकालय में रक्खे।

त्रिवेदी जी ने इस भाष्य का आरम्भ करके एक बड़ी कमी के पूर्ण करने का

उद्योग किया है। ईश्वर उनको बल तथा वेद प्रेमी आवश्यक सहायता प्रदान करें निर्विघ्नता के साथ वह शुभ कार्य पूरा हो... छपाई और कागज़ भी अच्छा है।

---

श्रीयुत महाशय **मुन्शीराम जी**—जिज्ञासु मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार—पत्र संख्या ९४ तिथि २७-१०-१९६६।

अथर्ववेद भाष्य आप का दिया व किया हुआ अवकाशानुसार तीसरे हिस्से के लगभग देख चुका हूं आप का परिश्रम सराहनीय है।

तथा— पत्र संख्या ११४ तिथि २२-१२-१९६६।

अवलोकन करने से भाष्य उत्तम प्रतीत हुआ।

---

श्रीयुत पं० **शिवशंकर शर्मा**—काव्यतीर्थ-छान्दोग्योपनिषद् भाष्यकार, वेदतत्त्वादि ग्रंथकर्त्ता वेदाध्यापक कांगड़ी गुरुकुल महाविद्यालय, आदि आदि, सम्पादक आर्यमित्र—८ फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य। श्री पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी का यह परिश्रम प्रशंसनीय है।... आप बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी कर और अब वहाँ से पेन्शन पाके अपना सम्पूर्ण समय संस्कृत पढ़ने में लगाने लगे। अन्ततः आपने वेदों में विशेष परिश्रम कर बड़ौदा राजधानी में वेदों की परीक्षा दी और उनमें उत्तीर्ण हो त्रिवेदी बने हैं। आप परिश्रमी और अनुभवी वृद्ध पुरुष हैं। आप का अथर्ववेदीय भाष्य पढ़ने योग्य है।

---

श्रीयुत पंडित **भीमसेन शर्मा इटावा**—उपनिषद् गीतादि भाष्यकर्ता वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—इसे प्रयाग के पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने प्रकाशित किया है। इसका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि प्रथम तो प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में...... अभिप्राय यह है कि भाष्य का ढंग अच्छा है... भाष्यकर्ता के मानसिक विचारों का झुकाव आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की तरफ़ है, अतएव भाष्य भी आर्य सामाजिक शैली का हुआ है। तब भी कई अंशों में स्वामी दयानन्द के भाष्य से अच्छा है। और यह प्रणाली तो बहुत ठीक है।

---

श्रीमती पंडिता **शिवप्यारी देवी** जी, १३७ हकीम देवी प्रसाद जी अतरसुइया, प्रयाग, पत्र ता० २१-१०-१९१५॥

श्रीयुत पण्डित जी नमस्ते,

महेवा के पते से आप का भेजा हुआ पत्र और अथर्ववेद भाष्य चौथा कांड मिला, मैंने चारों कांड पढ़े, पढ़कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। आप ने हम सभों पर अत्यन्त कृपा की है आप को अनेकों धन्यवाद हैं। आशा है कि पाँचवाँ कांड भी शीघ्र तैयार होकर वी० पी० द्वारा मुझे मिलेगा।

दो पुस्तक हवनमन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है, कृपाकर भेज दीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

---

श्रीयुत पण्डित **महावीर प्रसाद द्विवेदी**—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फ़रवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रम का यह फल है, कि आप ने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है...बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आप ने अपने भाष्य को अलंकृत किया है...आप की राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आप का भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

---

श्रीयुत पण्डित **गणेश प्रसाद शर्मा**—संपादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक फ़तहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थयुक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

---

बाबू **कालिकाप्रसाद जी**—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१२।

आप का भेजा अथर्ववेद भाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करें कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

---

श्रीयुत महाशय **रावत हरप्रसाद सिंहजी वर्मा**, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, जिला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आप ने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आप को वेद भण्डारे के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

---

श्रीयुत महाशय **पंडित श्रीधर पाठक जी, ( सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ )**—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज, पत्र ता० १७-६-१३।

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप जी यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है, और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

---

**प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६ लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)**

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी हैं। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्य लोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता, जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।...... ...... इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्होंने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोच कर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है"" ""त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

---

*The VIDYADHIKARI* (Minister of Education), *Baroda State, letter No 624 dated 6th February* 1913.

...It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the prize distribution. Please send them ...also add on the address lable " For Encouragement Fund.

---

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan. Letter dated March 25th, 1914.

*The Atharva Veda Bhashya*:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope ..the venture will not fail for want of pecuniary support

---

THE MAGISTRATE OF ALLAHAABD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

---

*THE ARYA PATRIKA LAHORE APRIL* 18 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda*, which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works... ..The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work; and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves.....Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest.....

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.